श्री रजनीश
बूझै बिरला कोई

बूझै बिरला कोई

अद्वैत तो जीवन को जीने की एक शैली है। इस भांति जीना है, कि दो के बीच विरोध खड़ा न हो। दो के बीच दोपन न आये। दो के बीच भी एक ही दिखाई पड़ता रहे। इसलिये कबीर के वचन उलट-बांसी मालूम पड़ते हैं।

> अम्बर बरसे धरती भीजै यह जाने सब कोई।
> धरती बरसे अम्बर भीजै बूझै बिरला कोई।

कबीर 'कहते हैं, धरती बरसे अम्बर भीजै।' कबीर कहते हैं, हमने उल्टा भी देखा है। धरती को बरसने और अम्बर को भीजते भी देखा है, सृष्टा ने तो सृष्टि को बहुत कुछ दिया है। वह कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन हमने सृष्टि को भी सृष्टा को लौटाते देखा है। परमात्मा ने तो सबको बनाया ही है, उसने तो सबको आपूर दिया ही है, लेकिन हमने एक और बात भी देखी है कि हमने परमात्मा की तरफ सृष्टि से जाते हुये मेघ भी देखे हैं। और हमने पृथ्वी को ही नाचते नहीं देखा है मेघों से घिरे, हमने परमात्मा को भी नाचते देखा है।

जब बुद्ध का मेघ लौटता है परमात्मा की तरफ, तब परमात्मा भी नाचता है। उसकी प्रसन्नता का क्या कहना उन क्षणों में।

ओशो रजनीश

बूझै बिरला कोई

(कबीर-वाणी)

ओशो रजनीश

साधना पॉकेट बुक्स

संकलन : मा अमृत साधना
संपादन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
प्रकाशक : साधना पाकेट बुक्स
39 यू० ए० बैंग्लो रोड,
दिल्ली-110007

दूरभाष : 2914161
2516715

संस्करण : 1989

प्रतियां : 4000

मूल्य : बारह रुपये

मुद्रक : आर० के० भारद्वाज प्रिंटर्स,
शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

ओशो रजनीश : एक झलक

ओशो रजनीश अद्वैत का माधुर्य है, समग्रता का सौन्दर्य है, जगत के समस्त विरोधाभासों का काव्य है। उनका होना न होने को अपने में समाहित किये हुये है। वे शून्य हैं और पूर्ण भी। वे स्वयं सन्देश हैं—अनादि के, अनन्त के सनातन के, भगवत्ता के। वे भगवान हैं।

उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा बड़ी अनूठी और मधुरिमा-युक्त है। उनका चलना होता है तो जैसे स्वयं नृत्य झंकृत हो रहा है। उनका बैठना होता है तो मानो अस्तित्व और अनस्तित्व मिलकर सूक्ष्म संगीत का सुमधुर ताना-बाना बुन रहे हैं। उनका उठना होता है तो जैसे अनाहित की आहट हो रही है। उनका मुखर होना होता है तो जैसे परम मौन की निस्तब्धता निसृत हो रही है। उनका मौन होना होता है तो जैसे वेद-वाणी का प्रबल प्रवाह चला आ रहा है। वे पलकें बंद करते हैं, तो मानो अनन्त अस्तित्व की लीला में समा रहे हैं। वे पलकें खोलते हैं तो जैसे सागर लहरों की क्रीड़ा का निनाद सुन रहा है। वे चले जाते हैं तो सब ठहर जाता है, सहम जाता है।

उनके आलोक की रश्मियां हमारे अन्धकार के साथ आंख-मिचौली खेलती हैं। हमारा अंधकार उनके आलोक से ही उनको देख पाता है क्षण भर को, और तब वह क्षण भी विराट हो जाता है। हमारी वेदना उन तक जाती है तो वे अपनी संवेदना का संस्पर्श देकर लौटा देते हैं। हमारी उदासी उन तक जाती है तो आनन्द की गहराई लेकर लौट आती है।

उनके आशीष अहर्निश बरस रहे हैं। हमारे प्राणों में जब भी अभीप्सा की आग जलती है और हम समर्पित होते हैं तो उनके मेघ खिंचे आते हैं, हम पर बरस जाते हैं।

उनकी करुणा अपार है।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न षंडै धारा।।
बसै गगन मैं दुनि न देखे, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि आकाश आसण नहिं छाड़ै, पीवै महारस मीठा।।
पगरट कंथा माहै जोगी, दिल में दरपन जोवै।
सहंस इकीस छह सै धागा, निश्चल नाकै पोवै।।
ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुनि लौ लागै।।

1. जोगी जग थैं न्यारा

16 माई 1975, प्रातः 8

जीवन मिट्टी का एक दिया है; लेकिन ज्योति उसमें मृण्मय की नहीं, चिन्मय की है। दिया पृथ्वी का, ज्योत आकाश की; दिया पदार्थ का, ज्योति परमात्मा की। दिया एक अपूर्व संगम है।

इसे ठीक से समझ लेना, क्योंकि तुम भी मिट्टी के एक दिए हो। लेकिन वही तुम्हारी परिसमाप्ति नहीं। और अगर तुमने ऐसा जाना कि तुम बस मिट्टी के ही दिये हो, तो तुम जीवन की सार्थकता और सत्य से वंचित रह जाओगे।

दिया जरूरी है, लेकिन ज्योति के होने के लिए जरूरी है; ज्योति के बिना दिये का क्या अर्थ ? ज्योति खो जाये, दिये का क्या मूल्य ? ज्योति न हो तो दिये का क्या करोगे?

ज्योति की स्मृति बनी रहे, ज्योति निरंतर आकाश की तरफ उठती रहे तो दिया सीढ़ी है, और तब तुम दिये को धन्यवाद दे सकोगे। जिन्होंने भी आत्मा को जाना, वे शरीर को धन्यवाद देने में समर्थ हो सके। जिन्होंने आत्मा को नहीं जाना, वे या तो शरीर को मानकर चलते रहे, ज्योति दिये का अनुसरण करती रही और निरंतर गहन से गहन अचेतना और मूर्छा में गिरते गये। या, जिन्होंने आत्मा को नहीं जाना, उन्होंने व्यर्थ ही शरीर से, दिये से संघर्ष मोल ले लिया। जो साथी हो सकता था उसे शत्रु बना लिया।

जिन्हें तुम संसारी कहते हो, वे पहले तरह के लोग हैं—जिनके भीतर का परमात्मा जिनके बाहर की खोल का अनुसरण कर रहा है; जिन्होंने गाड़ी के पीछे बैल जोत दिये हैं और गाड़ी के साथ घिसट रहे हैं। जिन्होंने क्षुद्र को आगे कर लिया है और विराट को पीछे, उनके जीवन में अगर दुख ही दुख हो तो आश्चर्य नहीं।

ये संसारी लोग हैं जिन्हें तुम भोगी कहते हो। फिर इनके ठीक विपरीत खड़े तथाकथित योगी हैं, धार्मिक लोग हैं। स्मरण रखें, उन्हें मैं तथाकथित कहता हूं,

क्योंकि वे नाममात्र के ही योगी हैं। उन्होंने गाड़ी और बैल के बीच संघर्ष कर रहा है; उन्होंने दिये और ज्योति के बीच शत्रुता बांध रखी है; उन्होंने आत्मा और शरीर के एक कलह निर्मित कर रखी है, एक संघर्ष रच रखा है।

भोगी तो भ्रांत है ही; तुम्हारा तथाकथित योगी भी भोगी से भिन्न नहीं है।

वास्तविक योगी कौन है ?

वास्तविक योगी वही है जिसने दिये के सहयोग का उपयोग कर लिया ज्योति को प्रज्वलित करने में; जिसने दिये से शत्रुता न बांधी और न ही दिये का अनुसरण किया; न ही बैल गाड़ी के पीछे बांधे और न ही गाड़ी और बैल के बीच किसी तरह की कलह पैदा की; वरन् सामंजस्य साधा एक सहयोग निर्मित किया।

निश्चित ही सहयोग अति कठिन है, क्योंकि ज्योति जाती है आकाश की तरफ। वह आकाश की है, आकाश की तरफ जाती है। दिया मिट्टी का है, मिट्टी में ही पड़ा रह जाता है। दोनों के आयाम भिन्न हैं, यात्रा भी अलग है। फिर भी अलग दिये और ज्योति में एक संगम है। वैसा ही संगम साध लेना योग है। शरीर और स्वयं में, मृण्मय और चिन्मय में।

कीचड़ से कमल पैदा होता है। तुम्हारे शरीर की कीचड़ से तुम्हारी आत्मा का कमल पैदा होगा। कीचड़ की दुश्मनी मत करना, अन्यथा कमल पैदा ही न होगा। कीचड़ और कमल में कितना ही विरोध दिखाई पड़े, भीतर गहरा सहयोग है। कीचड़ कितना ही कीचड़ लगे; कहां, संबंध भी तो नहीं मालूम पड़ता! कमल—सुन्दर, अपूर्व सुन्दर, अद्वितीय, रेशम-सा कोमल ! कहां कीचड़—गंदी दुर्गन्ध भरी। कहां कमल की सुवास ! दोनों में कोई नाता दिखाई नहीं पड़ता।

और अगर तुम जानते न होओ और कोई कीचड़ का ढेर लगा दे और कमल के फूलों का ढेर, और तुमसे कहे कि इन दोनों में कोई संबंध दिखाई पड़ता है ? तो तुम भी कहोगे कि इन दोनों में कैसा संबंध ? कहां कीचड़, कहां कमल ! लेकिन तुम जानते हो, कीचड़ से कमल पैदा होता है।

कीचड़ से कमल पैदा होता है, इसका अर्थ ही यह हुआ कि कीचड़ के गहरे में कमल छिपा है, अन्यथा पैदा कैसा होगा ? इसका अर्थ यही हुआ कि कीचड़

ऊपर-ऊपर से गंदी दिखाई पड़ती है, भीतर तो कमल जैसी ही होगी। इसका अर्थ हुआ कि दुर्गंध ऊपर का परिचय है; सुगन्ध भीतर का परिचय है।

शरीर को ही तुमने अगर देखा तो तुम कीचड़ पर रुक गये और कमल से अपरिचित रह गये। अगर तुमने शरीर से शत्रुता की और शरीर को दबाने और गलाने में लग गये तो भी तुम वंचित रह जाओगे, क्योंकि उस संघर्ष से कमल पैदा न होगा। कमल तो पैदा होता है कीचड़ के सहयोग से।

इस सहयोग का नाम ही योग की कला है। योग अस्तित्व की दुई के बीच एक को खोज लेने की कला है। जहां दो दिखाई पड़ें अत्यन्त विपरीत, वहां भी एक के ही सेतु को देख लेना, एक के ही जोड़ को देख लेना, वही योग की परम दृष्टि है।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं तुम्हारे भीतर छिपा हुआ ही तुम्हारे भीतर का राम बन जाएगा। तुम्हारे भीतर संभोग की वासना ही तुम्हारे आत्यंतिक खिलावट के क्षण में तुम्हारी समाधि बन जाएगी। तुम्हारी कीचड़ तुम्हारा कमल होने को है।

लड़ो मत; सम्हालो। अन्यथा तुम काटने-पीटने में लग जाओगे। काटना-पीटना एक तरह की हिंसा है: और काटना-पीटना एक तरह का गहन अज्ञान है। क्योंकि अस्तित्व व्यर्थ को पैदा ही नहीं करता। कितना ही तुम्हें व्यर्थ मालूम पड़ती हो कोई चीज; अस्तित्व ने व्यर्थ को पैदा करना जाना ही नहीं है। इसलिए तो हम अस्तित्व को परमात्मा कहते हैं। क्योंकि अस्तित्व कोई अंधा संयोग नहीं; एक सुनियोजित यात्रा है। अस्तित्व कोई अन्धी दौड़ नहीं; एक नियति है। एक परम ऋतु, एक परम नियम काम कर रहा है। यहां कुछ भी व्यर्थ नहीं है।

तुम्हारा काम, तुम्हारी काम-वासना व्यर्थ नहीं है। जिन्होंने तुमसे कहा है, वे ना-समझ हैं। तुम्हारी काम-वासना ही तुम्हारा परम जीवन भी नहीं है; उस पर रुके तो भी मर जाओगे; उससे लड़े तो भी मिट जाओगे। उससे ऊपर जाना है; और उसको ही सीढ़ी बनाकर जाना है। उससे ऊपर जाना है। उसका ही सहयोग लेना है। उसके ही कंधे पर हाथ रखना है! निश्चित ऊपर जाना है, पार जाना है, अतिक्रमण करना है; लेकिन संघर्ष से नहीं, अत्यन्त प्रेमपूर्ण, अत्यंत कलात्मक विधियों से।

लेकिन तुम्हारी समझ में बहुत बार तुम्हें ऐसा लगेगा: क्रोध का क्या उपयोग है? काट डालो!

अगर तुम शरीरशास्त्रियों से पूछो तो वे कहते हैं, कि शरीर में बहुत-सी चीजें हैं जिनका कोई उपयोग नहीं। उन्हें भी पता नहीं है। डाक्टर कितनी सरलता से अपेंडिक्स का आपरेशन करता है! टांसिल्स तो यूं निकाल देता है जैसे कि उनकी कोई जरूरत नहीं और चिकित्साशास्त्र अभी तक भी खोज नहीं पाया कि इनकी जरूरत क्या है। लेकिन वे हैं तो उनकी जरूरत तो होनी ही चाहिए, अन्यथा अस्तित्व एक दुर्घटना मात्र हो जाएगा। और डॉक्टर काटते रहते हैं टांसिल्स, जिसके टांसिल काट दिये, उसके बेटे को फिर टांसिल परमात्मा पैदा कर देता है। डॉक्टर काटते हैं अपेंडिक्स, लेकिन फिर उनके बेटे में अपेंडिक्स आ जाती है।

इतनी व्यर्थ चीज पुनरुक्त हो नहीं सकती थी। जरूर कोई रहस्य होगा जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। जहां तक हमारी समझ है। वहां तक व्यर्थ ही मालूम पड़ता है। डॉक्टर के पास जाओ, वह पहले यही देखता है कि अपेंडिक्स निकाल दें, कि टांसिल्स निकाल दें, कि दांत निकाल दें—कुछ ना कुछ निकालने पर लगा है।

जो डाक्टर की मनोदशा है। वही तुम्हारे धर्मगुरु की मनोदशा है। तुम जाओ उसके पास, वह फौरन बताने को तैयार हैं कि क्रोध अलग करो, काम-वासना का त्याग करो, लोभ छोड़ो, हिंसा छोड़ो—वह भी काटने को लगा है। सर्जरी शरीर पर भी चल रही है और आत्मा पर भी चल रही है।

लेकिन जिन्होंने गहरे जाना है, वे इसके विरोध में हैं। इस्लाम शरीर के किसी भी अंग को काटने के विरोध में है, क्योंकि इस्लाम में एक बड़ी महत्वपूर्ण धारणा है—वह योग की भी धारणा है, शायद इस्लाम तक योग से ही पहुंची होगी, क्योंकि इस्लाम तो नया है; योग अति प्राचीन है।

इस्लाम की धारणा है कि परमात्मा के पास जब तुम आओगे तो वह तुमसे पूछेगा कि तुम पूरे वापस लौटे हो? अगर तुम अधूरे वापस लौटे तो तुम दंडित किए जाओगे। परमात्मा ने जितना तुम्हें दिया था, कम से कम उतने तो वापस लौटना; ज्यादा न कर सको तो क्षमा मांग सकते हो, लेकिन कम होकर तो मत लौटना।

इसके अनेक आयाम हैं, इस बात के। निश्चित ही परमात्मा ने जितना तुम्हें दिया है उतना तो कम से कम लौटा ले जाना। उसको काट मत लेना। उसे बढ़ा सको तो ठीक। बीज दिया था, अगर फूल हो सके तो ठीक; लेकिन कम से कम बीज तो लौटा देना।

जीसस की बड़ी प्राचीन कथा है। जीसस निरंतर उसे दोहराते थे कि एक बाप अपने तीन बेटों में सम्पत्ति बांटना चाहता था, लेकिन निश्चय न कर पाता था कि कौन योग्य और कौन सुपात्र है। तीनों ही जुड़वा पैदा हुए थे; इसलिए उम्र से तय न किया जा सकता था। तीनों एक-से बुद्धिमान थे। तो उसने एक फकीर से सलाह ली। फकीर ने उसे एक गुर बताया।

उसने बेटों से कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं। और बेटों को उसने कुछ बीज दिये—फूलों के बीज—और कहा कि सम्हालकर रखना; जब मैं लौट कर आऊं तब मैं तुमसे वापस मांगूंगा।

पहले बेटे ने सोचा कि इन बीजों को कोई बच्चे उठा लिये, कोई जानवर चर गया—तिजोरी में बंद कर दें। तिजोड़ी में बंद करके रख दिये। निश्चित हो गया। लोहे की तिजोरी! चोरों का भी क्या डर! और कौन चोर लोहे की तिजोरी तोड़कर बीज चुराने आयेगा! वह निश्चिन्त रहा। बाप आयेगा लौटा देंगे।

दूसरे ने सोचा कि तिजोरी में रखूं बीज सड़ सकते हैं; और बाप ने ताजा जीवित बीज दिये और मैं सड़े लौटाऊं—यह तो लौटाना न हुआ। क्या करूं? बीज जीवित कैसे रहें? उसने सोचा, बाजार में बेच दूं, तिजोड़ी में रुपये रख दूं। बाप जब वापस आयेगा, बाजार से बीज खरीदकर लौटा देंगे।

तीसरे ने सोचा कि बीज का अर्थ ही होता है होने की संभावना। बीज का अर्थ ही होता है जो होने को तत्पर है, जिसके भीतर कुछ होने को मचल रहा है। तो बाप ने बीज दिये हैं, मतलब साफ है कि इन्हें इतना ही जिसने रखा, वह ना-समझ है। ये तो बढ़ने को राजी थे, ये तो फूल बनने को राजी थे, और एक बीज से करोड़ बीज पैदा होने को राजी थे। पता नहीं, बाप कब लौटे, तीर्थ लम्बा है, यात्रा वर्षों लेगी—उसने बीज बो दिये।

तीन बरस बाद वापस लौटा पिता। पहले बेटे को उसने कहा, उसने तिजोड़ी की चाबी दे दी। खोली गई तिजोड़ी, करीब-करीब सभी बीज सड़ चुके थे। न

हवा लगी, न सूरज की रोशनी लगी और किसी ने उन पर ध्यान ही न दिया तीन वर्ष तक तिजोड़ी में लोहे की।

बीज कोई लोहे की तिजोड़ियों में बन्द करने को थोड़े ही हैं! उन्हें खुला आकाश चाहिए, हवा की पुलक, रोशनी चाहिए, तो वे जिन्दा रह सकते हैं। वे सड़-सड़ गए थे। और जिन बीजों से फूलों की अपूर्व सुवास पैदा हो सकती थी, उनकी जगह उस तिजोड़ी से सिर्फ दुर्गन्ध निकली—सड़े हुए बीजों की दुर्गन्ध!

बाप ने कहा: तुमने सम्हाला तो, लेकिन सम्हाल न पाये। तुम मेरी सम्पत्ति के अधिकारी न हो सकोगे। तुम ना-समझ हो। जितना मैं तुम्हें दे गया था उतने भी तुम वापस न कर पाये। ये बीज तो समाप्त हो गये। इनमें अब एक भी जीवित नहीं है। अब इनको बोओगे तो कुछ भी पैदा न होगा। यह तो राख है। और मैं तुम्हें बीज दे गया था। बीज थे जीवंत, उनमें संभावना थी बहुत होने की इनकी सारी संभावना खो गई है, सिर्फ राख है, इनमें से कुछ भी नहीं हो सकता। ये कब्रें हैं।

दूसरे बेटे से कहा। दूसरा बेटा भागा बाजार रुपये लेकर, बीज खरीदकर ले आया—ठीक उतने ही बीज जितने बाप दे गया था। बाप ने कहा कि तुम थोड़े कुशल हो, लेकिन तुम भी काफी नहीं; क्योंकि जितना दिया था उतना लौटाना भी कोई लौटाना है! यह तो जड़बुद्धि भी कर लेता। इसमें तुमने कुछ बुद्धिमत्ता न दिखाई और बीज का तुम राज ही न समझे। बीज का मतलब ही यह है कि जो ज्यादा हो सकता था। उसे तुमने रोका और ज्यादा न होने दिया। तुम पहले से योग्य हो लेकिन पर्याप्त नहीं।

तीसरे बेटे से पूछा कि बीज कहाँ है? तीसरा बेटा बाप को भवन के पीछे ले गया जहां सारा बगीचा फूलों और बीजों से भरा था। उसके बेटे ने कहा, ये रहे बीज! आप दे गये थे; मैंने कहा इन्हें बचाकर रखने में मौत हो सकती है। इन्हें बाजार में बेचना उचित न मालूम पड़ा, क्योंकि आप सुरक्षित रखने को कह गये थे। और फिर आपने चाहा था कि यही बीज वापस लौटाये जायें। बाजार से तो दूसरे बीज वापस लौटेंगे, वे वही न होंगे। फिर वे उतने ही होंगे जितने आप दे गये थे। तो मैंने तो बीज बो दिए थे। अब ये वृक्ष हो गए हैं। इनमें बहुत बीज लग गए हैं, बहुत फूल लग गए हैं। हजार गुने करके आपको वापस

लौटाता हूं।

स्वभावतः तीसरा बेटा बाप की सम्पत्ति का मालिक हो गया।

इस्लाम कहता है : परमात्मा ने तुम्हें जितना दिया है कम-से-कम उतना तो लौटाना। अगर बढ़ा न सको...बढ़ा सको तब तो बहुत...! और इस आधार पर इस्लाम सर्जरी पसंद नहीं करता।

एक बड़ी अनूठी कहानी मैंने सुनी है; सच न भी हो, फिर भी बड़ी गहराई से सचाई को छूती है। ब्रिटिश राज्य के जमाने से लाहौर में एक बहुत बड़ा सर्जन था—अंगरेज। और पठान तो आपरेशन के बिलकुल खिलाफ है। अंगुली भी कट जाये तो वे संभाल कर रखते हैं उसे। जब आदमी मर जाता है तो उसकी अंगुली को उसकी अंगुली में जोड़ कर पास में रखते हैं, क्योंकि परमात्मा कहेगा : पूरा ! अंगुली कटी है, अंगुली कहां गई ? जितना दिया था उतना वापस नहीं लाए। अपंग, अधूरे खण्डित-तुम किस मुंह से आये हो ? अखंड आओ तो ही परमात्मा के द्वार पर स्वीकृति होगी।

पठान तो सीधे-सादे गैरपढ़े-लिखे लोग हैं। उन्होंने इसका बिल्कुल स्थूल अर्थ पकड़ा है। तो ने उंगली भी कट जाए, उसको भी सम्हाल कर रखते हैं।

एक पठान का पैर सड़ गया किसी भयंकर बीमारी में और अगर पैर न काटा जाए तो वह पटान पूरा सड़ जायेगा। सर्जन ने बहुत समझाया लेकिन पठान ने कहा कि नहीं, मैं मरूंगा फिर अधूरा जाऊंगा, लंगड़ा, तो परमात्मा क्या कहेगा ? और बड़ी हंसी होगी। और भी पठान वहां मौजूद होंगे कयामत के दिन और वे सब कहेंगे, अरे ! पठान होकर आधा पैर कहां।

सर्जन ने समझाने को क्योंकि यह पठान तो ना-समझ है, इसकी कुछ अकल में नहीं है, वह मरेगा पूरा-उसने कहा कि तुम ऐसा करो, घबराओ मत, मैं तुम्हारे पैर को सम्हाल कर रखूंगा। उसने जाकर अपनी प्रयोगशाला में बताया, कई अंग उसने सम्हाल कर रखे थे। पठान को भरोसा आ गया। और पठान ने कहा कि जब मैं मरूं तो कृपा करके यह पैर मेरा वापस लौटा दिया जाये। मेरे घर के लोग आएंगे, यह पैर उन्हें दे दिये जाये, क्योंकि मैं अधूरा न जाना चाहूंगा।

सीधे-सादे पठान ! बड़े महवत्पूर्ण विचार को भी उन्होंने अपनी सादगी के ढंग से पकड़ा है। खैर, आपरेशन हो गया। पठान हर वर्ष आता रहा देखने कि

पैर सम्हाल कर रखा गया है या नहीं। पैर सम्हाल कर रखा था। और धीरे-धीरे उसकी सरलता पर उस चिकित्सक को भी बड़ा प्रेम और करुणा आ गई थी। पहले तो उसने ऐसे ही कहा था बात-बात में, लेकिन फिर उसने सम्हाल कर ही रखा था।

लेकिन संयोग की बात, उसकी प्रयोगशाला में आग लग गई और सब जल गया। उसने बहुत कोशिश की कि कम-से-कम पठान का पैर बच जाये, क्योंकि वह ना-समझ किसी भी दिन खड़ा हो जाएगा तो मुसीबत खड़ी होगी। लेकिन वह नहीं बच सका। पैर भी नहीं बच सका, पूरी प्रयोगशाला जल गई।

उसकी रिटायरमेंट का वक्त आ गया, वह रिटायर भी हो गया और लंदन वापस चला गया। पठान की बात आई-गई हो गई, भूल गया। लेकिन, अगर कभी किसी पठान को रास्ते पर देख लेता तो उसे याद आ जाती। न केवल याद आती, बल्कि उसके मन में एक पीड़ा भी होती कि पता नहीं, पठान ही सही हो और परमात्मा पूरे आदमी को मांगता हो तो मैं कसूरवार हो गया।

वैज्ञानिक आदमी था; इस पर कुछ भरोसा नहीं था। लेकिन फिर भी अंतः-करण, कितने ही तुम वैज्ञानिक हो जाओ अंतःकरण तो मनुष्य का ही होता है। कितना ही तर्क का जाल फैल जाए, भीतर हृदय तो वैसा ही अनुभव करता रहता है जैसा छोटे बच्चों का। उसे चिंता पकड़ती थी। कभी-कभी पठान को देख ले, उसे लगता था कि मैंने एक अच्छा काम किया या बुरा काम किया, संदिग्ध है।

एक रात वह सोया था, कोई दो बजे रात अचानक किसी ने उसे हिला कर जगाया। उसने आंख खोली, वह पठान खड़ा है। घबड़ा गया। दरवाजा बंद है ! ताले पड़े हैं ! पठान कहां से अंदर घुस आया ! और पठान बहुत नाराज है और उसने इशारा किया, मेरा पैर ! और अपना कटा हुआ पैर बताया।

चिकित्सक को कुछ सूझा नहीं। तभी उसे याद आया कि एक पैर उसकी प्रयोगशाला में जो उसने अभी नई बनाई है, कुछ आठ-दस दिन पहले ही किसी का कटा है, वह वहां है, उससे काम चल जाएगा। उसने पठान का हाथ पकड़ा, वह अपनी प्रयोगशाला में ले गया। उसने जाकर उसको पैर के पास खड़ा कर दिया। पठान का चेहरा प्रसन्न हो गया, वह मुस्कराया। पैर के पास गया। लेकिन भूत हो गई। उसका दांया पैर कटा था और वह बांया था। जिस कांच के

बर्तन में उसने सम्हाल कर रखा था, उसने उठा कर कांच का बर्तन नीचे पटक दिया और नाराजगी से, वह घर के बाहर हो गया।

यह डॉक्टर तो इतना घबड़ा गया। सुबह इसकी नींद खुली तो इसने सोचा सपना होगा। यह कहीं हो सकता है! लेकिन जब प्रयोगशाला में जा कर देखा और टूटा हुआ जार देखा और नीचे पड़ा हुआ पैर देखा, तब तो यह मुश्किल हो गया तय करना, कि यह सपना हो सकता है।

यह संभव है कि सपने में उसी ने जार पटका हो। यह संभव है। इसलिए मैं कहता हूं कि पक्का नहीं, कहानी कहां तक सच होगी, कहां तक झूठ होगी। सपने में खुद ही जार पटका हो, यह भी हो सकता है।

और यह दुनिया बड़ी अनूठी है। यह भी हो सकता है कि पठान आया हो।

फिर उसने खोजबीन करवाई तो पता चला कि जिस रात उसने पठान को देखा उसी रात पठान की मृत्यु हुई। तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि पठान की चेतना इतनी विह्वल रही हो अपने पैर को पाने के लिए कि वह मौजूद हो गई हो, उसने जा कर जगा दिया हो चिकित्सक को।

एक बात साफ है कि परमात्मा ने तुम्हारे भीतर कुछ भी अकारण पैदा नहीं किया है। जैसे मेरे अनुभव में कुछ बातें हैं जो मैं तुम्हें कहूं। वे शायद कभी चिकित्सकों के काम पड़ जाएं। क्योंकि, कभी-न-कभी चिकित्साशास्त्र, सर्जरी, मनुष्य के अन्तरात्माओं को स्पर्श करेगी।

जहां तक बोलने का और साधारण आदमी की चेतना का सम्बन्ध है, टांसिल्स का कोई उपयोग मालूम नहीं होता। लेकिन जहां तक मौन का सम्बन्ध है, टांसिल्स का उपयोग है। और जिस व्यक्ति के टांसिल्स निकल गए हैं, उसे मौन होना मुश्किल हो जाता है, यह मेरा अनुभव है। वह चुप नहीं हो सकता। शायद बोल ज्यादा अच्छी तरह से सकता हो, क्योंकि टांसिल्स के अवरोध बोलने में बाधा बनते हैं। सर्दी-जुकाम पकड़ता है, टांसिल करीब आ जाते हैं, एक-दूसरे से रगड़ खाते हैं, सूजन हो जाती है, बोलने में कष्ट होता है।

लेकिन ठीक इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति मौन में उतरता है तो जिसके टांसिल्स नहीं है उसको मैंने मौन उतारते नहीं देखा: जरूर कहीं कुछ संबंध है कि टांसिल्स मौन में सहायता देते हैं। और जो व्यक्ति वर्षों तक मौन रहते हैं, उनके टांसिल बिलकुल करीब आ जाते हैं। इतने करीब आ जाते हैं कि अगर वे बोलते

होते तो बोलना मुश्किल हो जाता—जैसे मेहरबाबा।

कोई व्यक्ति तीन वर्ष तक अगर मौन रह जाए, बिलकुल मौन, तो टांसिल्स बिलकुल करीब आ जाते हैं। और जो बोलने की ऊर्जा है, जो विचार का प्रवाह है, फिर ऊपर की तरफ नहीं जाता, वही बोलने की ऊर्जा हृदय की तरफ गिरने लगती है और टांसिल उसके गिरने में सहयोगी होते हैं। किसी दिन शायद सर्जरी जान सके।

जिन लोगों की अपेंडिक्स निकल गई है··· और डॉक्टर तो बड़े तत्पर रहते निकालने में···।

मैंने सुना है कि एक सर्जन की, बड़े प्रख्यात सर्जन की पत्नी ने एक दिन सुबह उठकर देखा कि उसकी अंगरेजी की किताब के पन्ने किसी ने फाड़ लिए हैं। तो उसने अपने पति को पूछा कि यहां कोई आया भी नहीं किसने ये पन्ने फाड़े? उसने कहा! अरे, मुझे क्षमा करना! मैंने देखा, उन पर लिखा है अपेंडिक्स। मैंने जल्दी से बाहर निकाल लिए। ख्याल ही न रहा।

डॉक्टर तो एकदम तत्पर है!

जो लोग, जिनकी अपेंडिक्स निकाल ली गई है, कुछ बातों में उनको कठिनाई शुरू होती है। एक: उनकी आत्मा को शरीर के बाहर ले जाना बड़ा कठिन होता जाता है, जिसको आध्यात्मिक लोग ऐस्ट्रल-प्रोजैक्शन कहते हैं—शरीर के बाहर निकल कर यात्रा करना। वह अपेंडिक्स जिसकी निकल गई उसको मुश्किल हो जाता है। वह शरीर के बाहर नहीं निकल पाता। जिसकी अपेंडिक्स स्वस्थ है, वह शरीर से बाहर सुविधा से निकल पाता है—जैसे अपेंडिक्स सूक्ष्म शरीर को बाहर भीतर ले जाने में सहयोगी होती है।

ये सिर्फ संकेत दे रहा हूं, क्योंकि इस सम्बन्ध में कुछ बहुत खोजबीन कभी की नहीं गई है। लेकिन मेरे अनुभव में जिनकी अपेंडिक्स निकल गई है, हजारों लोगों ने मेरे करीब ध्यान किया है, उनमें से अनेक लोगों को शरीर के बाहर जाने का अनुभव होता है। जब भी किसी को शरीर के बाहर जाने का अनुभव होता है तब मैं निश्चित पूछता हूं कि उसकी अपेंडिक्स की क्या हालत है? तो मैंने सदा पाया, जिनकी निकल गई है, उनको बाहर जाने का अनुभव कभी नहीं होता, जिनकी नहीं निकलती और स्वस्थ है, उनको ही बाहर जाने का अनुभव होता है।

और यह एक बड़ा मूल्यवान अनुभव है। शरीर के बाहर जाकर जो अपना शरीर को पड़ा हुआ देख लेता है, उसकी शरीर-मूर्च्छा सदा के लिए टूट जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपेंडिक्स सेतु है, जोड़ है, और इस जोड़ के गिर जाने पर सूक्ष्म शरीर का बाहर निकलना, भीतर आना कठिन हो जाता है। इसलिए योग भी शरीर के किसी अंग को काटने के पक्ष में नहीं है।

और जो बात सच है शरीर के सम्बन्ध में, उससे भी ज्यादा सच वही बात है मन सम्बन्ध में।

तुमने कभी सुना है कि कोई नपुंसक आदमी ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुआ हो? मनुष्य-जाति का इतिहास लम्बा है। कम-से-कम पांच हजार साल का तो सुनिश्चित ज्ञात है। इन पांच हजार सालों में एक भी इंपोटेंट, नपुंसक आदमी परमात्मा को उपलब्ध नहीं हुआ। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है काम और वीर्य-ऊर्जा परमात्मा की उपलब्धि में अनिवार्य है। उसके बिना नहीं हो सकेगा?

इसलिये नपुंसक से ज्यादा दीन कोई आदमी नहीं है। उसकी दीनता इतनी ही नही है कि वह संभोग न कर सकेगा, उसकी गहरी दीनता यह है कि समाधि को उपलब्ध न हो सकेगा। लेकिन सौभाग्य की बात यह है कि नपुंसक साधारणतया होते ही नहीं। अगर हजार आदमियों को ख्याल हो कि वे नपुंसक है तो उनमें से सिर्फ एक नपूंसक होता है, बाकी को सिर्फ ख्याल होता हैं, वहम होता है।

मगर फिर भी नपूंसक होते है और वे उपलब्ध नहीं हो सकते है। ऊर्जा ही नहीं है जिसके सहारे यात्रा हो सके। कीचड़ ही नहीं हैं, कमल कैसे पैदा हो? दिया ही नहीं है, ज्योति कहां टिके, कहां ठहरे, कहां आवास करे, कहां घर बनाए?

और मैं तुमसे कहता हूं कि जिन लोगों ने ब्रह्मचर्य को एक तरह की नपुंसकता मान लिया है, वे भी परमात्मा को उपलब्ध नहीं होते। ऊर्जा का गहन प्रवाह चाहिए, उद्दाम वेग चाहिए, नदी जैसे बाढ़ में हो ऐसे वीर्य की संपदा चाहिये—तभी तुम ऊपर उठ सकोगे। जो नीचे तक नहीं जा सकता, वह ऊपर तक कैसे जायेगा, थोड़ा सोचो।

नीचे जाने में बहुत शक्ति की जरूरत नहीं है। जैसे पहाड़ से पत्थर को छोड़

दो वह अपने आप गिरता चला आता है जमीन की तरफ। कोई नीचे आने के लिए शक्ति लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। जो नीचे तक जाने में समर्थ नहीं है, नपुंसक है, वह ऊपर कैसे जा सकेगा? नीचे तक जाने में उसे कठिनाई मालूम पड़ती है, उतनी ऊर्जा भी नहीं हैं तो प्रगाढ़ और उद्दाम वेग, उत्तुंग लहरें कामवासना की, जिस पर सवार होकर ऊपर जाता है, वह कैसे जा सकेगा?

इसलिए अगर तुम मेरी बात समझ सको तो ब्रह्मचर्य बड़ी विपरीत बात है नपुंसकता से। परम वीर्य की उपलब्धि से ब्रह्मचर्य फलित होता है। काटने-दबाने से शरीर को मिटाने से कोई कहीं नहीं पहुंचता। शरीर को जितना तुम स्वस्थ, सम्यक् संतुलित, शांत, ओजपूर्ण, ऊर्जा से भरा हुआ, परिपूर्ण बना सको, उतनी ही सुगमता होगी। उतने ही तुम ऊपर जा सकोगे।

जैसा मैंने कल तुमसे कहा कि जब भी कामवासना उठे, तब जोर से श्वास को बाहर फेंकना, पेट को भीतर जाने देना—मूलबन्ध लग जाएगा, मूलाधार सिकुड़ जाएगा। मूलाधार के ऊपर शून्य होने से ऊर्जा शून्य में उठ जायेगी। इसे अगर तुम निरंतर करते रहे, अगर इसे तुमने एक सतत साधना बना लो—और इसका कोई पता किसी को नहीं चलता, तुम इसे बाजार में खड़े हुये कर सकते हो, किसी को पता भी नहीं चलेगा, तुम दुकान पर बैठे हुये कर सकते हो, किसी को पता भी न चलेगा।

अगर एक व्यक्ति दिन में कम-से-कम तीन सौ बार, क्षण भर को भी मूलबंध लगा ले, कुछ ही महीनों के बाद पायेगा, कामवासना तिरोहित हो गई। काम ऊर्जा रह गई, वासना तिरोहित हो गई। और तीन सौ बार करना बहुत कठिन नहीं है। यह मैं सुगमतम मार्ग कह रहा हूं जो ब्रह्मचर्य की उपलब्धि का हो सकता है।

फिर और कठिन मार्ग है जिनके लिये सारा जीवन छोड़ कर जाना पड़ेगा। पर कोई जरूरत नहीं हैं। यह किसी को भी पता नहीं चलेगा कि कब तुमने श्वास बाहर फेंक दी—बाजार में अपनी दुकान पर, कुर्सी पर दफ्तर में बैठे हुये, कब तुमने चुपचाप अपने पेट को खींच लिया। एक क्षण में ऊर्जा ऊपर की तरफ स्फुरण कर जाती है। और तुम पाओगे कि उसके बाद घड़ी, आधा घड़ी के लिए तुम एकदम शांत हो गए, हलके हो गए, एक ताजगी आ गई।

योग कोई आत्महत्या नहीं है, योग एक बड़ी महान प्रक्रिया है, एक कला है और कदम-कदम अगर तुम चलते रहो तो तुम्हारे भीतर सब छिपा है। तुम सब लेकर ही आये हो, प्रगट करने की बात है। तुम अप्रगट परमात्मा हो, बस जरा प्रगट करने की बात है। सब साज मौजूद है, सिर्फ उंगलियां थोड़ी साधनी हैं और वीणा से स्वर उठने शुरू हो जाएंगे। जैसे-जैसे उंगलियां सधेंगी वैसे-वैसे गहनतम संगीत पैदा होगा।

और एक ऐसी घड़ी आती है कि जब वीणा की जरूरत भी नहीं रह जाती। उंगलियों की भी जरूरत नहीं रह जाती—तब परम संगीत सुनाई पड़ने लगता है जो चारों तरफ मौजूद है। सिर्फ तुम्हारे पास सुनने की क्षमता नहीं है। पूरा अस्तित्व उसकी गूंज से भरा है। उस गूंज को ही हमने ओंकार कहा है।

ओम् अस्तित्व की गूंज है। वह कोई शब्द नहीं है, न कोई ध्वनि है, वह अनाहत नाद है। उसको कोई पैदा नहीं कर रहा है, वह अस्तित्व के होने का ढंग है। जैसे पहाड़ से नदी बहती है तो कलकल का नाद होता है; जैसे पक्षी गीत गा रहे हैं; हवायें निकलती हैं वृक्षों से, सरसराहट पैदा होती है—ऐसा अस्तित्व के होने का ढंग ओंकार है। उसको कोई पैदा नहीं कर रहा है। उसके पैदा होने के लिए दो चीजों के आघात की जरूरत नहीं है, इसलिए अनाहत! वह आहत नाद नहीं है। ताली बजाओ—आहत नाद है। दो चीजें टकराती हैं- ध्वनि पैदा हो जाती है। ओंकार कोई टकराहट से नहीं पैदा हो रहा है। इसलिए ओंकार अद्वैत है। जो टकराहट से पैदा होगा उसमें तो दो की जरूरत है; एक हाथ से ताली नहीं बजती। ओंकार एक हाथ की ताली है।

झेन फकीर जापान में अपने शिष्यों को कहते हैं कि जाओ और खोजो कि एक हाथ की ताली कैसे बजती है? वे ओंकार की खोज के लिए कह रहे हैं कि जाओ ओंकार का नाद खोजो। उसके कहने का ढंग है, एक हाथ की ताली कैसे बजती है। ताली तो सदा दो हाथ से बजती है।

बड़ी मीठी कथा है झेन में, एक छोटा बच्चा एक सद्गुरु की सेवा में आया करता था। और भी बड़े साधक आते थे। वह बैठकर चुपचाप सुनता था।

यहां भी तुमने देखा होगा, एक छोटा-सा सिद्धार्थ है, वह ऐसा ही साधक रहा होगा। यह भी छोटा सिद्धार्थ नियुक्तियां मांगता है, आकर ठीक व्यवस्था से मुझे नमस्कार करता है, अपनी चटाई बिछाकर बैठ जाता है। जब तक उसका बल

रहता है, जागा रहता है; फिर सो जाता है। लेकिन आता है दर्शन करने।

छोटे बच्चे को पिछले कैंप में बाहर कर दिया गया था, तो उसने बड़ा विरोध किया। आखिर उसने विरोध मेरे पास भेजा कि यह हमारा घर है और यहां से हमें अलग कोई भी नहीं कर सकता। मजबूरी! उसको भीतर आने की आज्ञा देनी पड़ी। स्वभावतः उसके पीछे और बच्चे भी फिर प्रवेश किए।

वैसा, सिद्धार्थ जैसा वह साधक छोटा-सा बच्चा गुरु के पास आता था। वह बैठता था अपनी चटाई बिछा कर, सुनता था गुरु की बातें दूसरों से जो गुरु कहता था।

एक दिन वह आया, उसने चटाई बिछाई, गुरु के चरणों में सिर झुका कर कहा कि मुझे भी ध्यान की विधि दें। गुरु थोड़ा हंसा होगा। उस जगत में बड़े-बड़े छोटे-बच्चों जैसे हैं। छोटा बच्चा! लेकिन जब इतनी सरलता से पूछा गया है तो इंकार नहीं किया जा सकता। गुरु ने कहा कि तू ऐसा कर, एक हाथ की ताली को सुनने की कोशिश कर।

उसने झुक कर नमस्कार किया विधिवत्। वह गया, बड़ी चिंता में पड़ गया। वह बैठा। उसने सब तरफ से सुनने की कोशिश की। सांझ का सन्नाटा था, कौए वापस लौटे थे दिन भर की यात्रा और थकान से और कांव-कांव कर रहे थे। उसने कहा कि हो-न-हो, यही एक हाथ की आवाज है।

वह भागा, दूसरे दिन सुबह गुरु के पास आया। उसने कहा 'पा ली! कौओं की आवाज?

गुरु ने कहा कि नहीं, यह भी नहीं है। और खोजो।

वह गया, रात के सन्नाटे में मौन बैठा रहा। झींगुर बोलते थे, उसने कहा, हो-न-हो सन्नाटे की आवाज—यही वह आवाज है। दूसरे दिन सुबह वह मौजूद हुआ। उसने कहा : 'झींगुर की आवाज?' गुरु ने कहा कि नहीं, और खोजो। तुम करीब आ रहे हो। मगर थोड़ा और खोजो।

कुछ दिन तक वह नहीं लौटा। बड़ी खोज की, तब एक दिन उसे पता चला, प्राचीन आश्रम के वृक्षों से निकलती हुई हवा, एक जरा-सी सरसराहट की पकड़ में न आये, पहचान में आये। उसने कहा, हो-न-हो यही है। वह आया। उसने कहा। 'वृक्षों से निकलती हुई हवा की आवाज, सरसराहट?' गुरु ने कहा कि नहीं! करीब तुम आ रहे हो, लेकिन अभी भी बहुत दूर हो। खोजो।

फिर कुछ महीने तक बच्चा न आया। गुरु चिंतित हुआ, क्या हुआ ? गुरु उसकी तलाश में गया। वह एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठा था। उसके चहरे पर ही साफ था कि उसने आवाज सुन ली है। सारा तनाव जा चुका था। वह बुद्धवत् था। जैसे हो ही न।

तो गुरु ने उसे उठाया और कहा : 'क्या हुआ ? उस आवाज का ?

उस छोटे से बच्चे ने कहा : 'जब सुन ही ली तो कहना मुश्किल हो गया। अब मैं यह सोच रहा हूं बहुत दिन से कि कैसे बताऊं कैसे कहूं !

गुरु ने कहा : 'अब कोई जरूरत नहीं !

वह छोट बच्चा भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।

ओंकार है वह आवाज। जब तुम बिलकुल शांत हो जाते हो, जब तुम होते ही नहीं, मिट जाते हो, जब तुम्हारा आवास शून्य गगन मंडल में हो जाता है, जब सुनाई पड़ती है वह आवाज, तब ओंकार का नाद सब तरफ हो रहा है। वही मूल अस्तित्व है। सभी कुछ उसी मूल से निर्मित हुआ है।

ओंकार की ही पर्त-पर्त जम कर चट्टान बनती है। ओंकार की ही पर्त-पर्त जम कर वृक्ष बनते हैं। ओंकार की ही पर्त-पर्त पक्षियों के कंठ में गीत गाती है। ओंकार की ही पर्त-पर्त तुम हो वह मूल है ! वह मूल धातु है।

जैसे वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत-ऊर्जा से सारा जगत बना, वैसे हम पूरब में कहते हैं कि विद्युत-ऊर्जा सिर्फ ओंकार की ही एक शैली है। वह भी ओंकार का ही एक अघात है।

अस्तित्व विद्युत से नहीं बना है, अनाहत नाद से बना है। विद्युत भी अनाहत नाद का एक ढंग, एक शैली है, एक रूप है। और इस बात की बहुत संभवाना है कि वैज्ञानिक आज नहीं कल योगियों से राजी हों उन्हें होना पड़ेगा, क्योंकि उनकी खोज बाहर-बाहर है, योगी की खोज भीतर है। वे परिधि पर खोजते हैं, योगी केन्द्र पर खोजता है। उन्हें राजी होना ही पड़ेगा। आज नहीं कल विज्ञान योग के सामने नतमस्तक होगा। कोई दूसरा उपाय नहीं है।

ये कबीर के वचन समझने की कोशिश करें।

"अवधू जोगी जग थैं न्यारा।'

ये जग से बड़ा न्यारा है।

जग में दो तरह के लोग हैं—भोगी त्यागी। जोगी जग थैं न्यारा—वह भोगी से अलग है, क्योंकि शरीर को सब कुछ नहीं मानता; वह त्यागी से अलग है, क्योंकि वह शरीर को इतना मूल्य का भी नहीं मानता कि उसका त्याग करना भी सार्थक हो सके। जिसका मूल्य ही नहीं, उसका तुम भी त्याग करते हो ? क्या तुम रोज कहते हो, घर के बाहर जोर से चिल्ला कर कि आज फिर घर के कचरे का त्याग कर दिया। देखो, कैसे महादानी हूं ! घर के कचरे का त्याग करते वक्त कोई भी तो घोषणा नहीं करता। तुम घोषणा करोगे तो लोग पागल समझेंगे।

लेकिन, जब कोई त्यागी घोषणा करता है कि मैंने लाखों पर लात मार दी तो वह भोगी ही है। अभी भी लाखों का मूल्य है। अभी भी समझता है इसका कुछ सार है। पहले भोग के लिए पकड़ा था, अब छोड़ा है; लेकिन मूल्य की पकड़ तो नहीं छूटी। लाखों को लात मार दी तो समझ लेना कि लात ठीक से लग नहीं पाई, चूक गई। लग ही जाती तो लाखों का हिसाब रखता ?

न तो योगी भोगी है और न त्यागी—'जोगी अवधू जग थैं न्यारा'—वह इन दोनों से अलग है। वह एक अनूठा ही व्यक्तित्व है। वह कुछ-कुछ भोगी जैसा है, कुछ-कुछ त्यागी जैसा है उसने भोग और त्याग के बीच सामंजस्य खोज लिया। उसने भोग और त्याग के बीच संगीत खोज लिया। क्योंकि परमात्मा भोग में भी है और त्याग में भी ! परमात्मा भोगी में भी छिपा है और त्यागी में भी। उसने यह राज खोल लिया; उसने देख लिया कि भोग एक किनारा है और त्याग दूसरा किनारा, और परमात्मा तो बीच में बहती हुई नदी की धारा है।

'अवधू जोगी जग थैं न्यारा'—वह दोनों किनारों से अलग है; वह बीच की धार है; वह मध्य में खड़ा है; उसने संतुलन पा लिया। संतुलन यानी संयम।

भोगी असंयमी है। और मैं तुमसे कहता हूं कि त्यागी भी असंयमी है। असंयम संयत का अर्थ है जो मध्य में खड़ा है, जो बीच की धारा है, जो दोनों तरफ देखता है; लेकिन जिसने शुद्ध मध्य बिंदु खोज लिया। न यहां झुकता है, न वहां झुकता है; न तो शरीर की मान कर चलता है और न शरीर की हत्या करने में लग जाता है; न तो स्वाद के लिए जीता है और न शरीर के ऊपर अस्वाद को थोपता है। वरन स्वाद में ब्रह्म को खोज लेता है। और तब स्वाद और अस्वाद एक ही चीज के दो नाम हो जाते है।

योगी जानता है किनारों का कैसे उपयोग करना है। भोगी एक किनारे को पकड़ता है, त्यागी दूसरे किनारे को पकड़ता है। दोनों की नदीधार अवरुद्ध होती है। कहीं एक किनारे से धारा चली है? परमात्मा भी एक के किनारे से नहीं चल सकता; उसको भी द्वैत की धारा के बीच चलना पड़ा है। तो तुम कैसे चल सकोगे? परमात्मा को भी द्वैत पैदा करना पड़ता है; उन्हीं के बीच अद्वैत की धारा बह रही है।

भोगी भी गलती करता है, त्यागी भी गलती करता है। दोनों की चेष्टा यह है कि हम एक किनारे से जी लेंगे! यह अहंकार है।

'अवधू जोगी जग थै न्यारा'

'मुद्रा निरति सुरति कर सींगी, नाद न षंडै धारा।

वह क्या करता है योगी? क्या है उसकी कला? कबीर यहां सार कह देते हैं, मुद्रा निरति! निरिति का आर्थ है जो अति पर नहीं जाती। मुद्रा निरित! निर-अति—जो मध्य में खड़ा है। जिसको बुद्ध ने 'मज्झिम निकाय' कहा है, जिसको कन्फ्यूशियस ने 'दि गोल्डन मीन'—स्वर्णमध्य कहा है, जो ठीक बीच में खड़ा है—निरति।

मुद्रा निरति—मध्य में खड़ा होना ही उसकी मुद्रा है। और सब मुद्राएं तो बच्चों के खेल हैं। और किन्हीं मुद्राओं का बड़ा मूल्य नहीं है। निरति गहरी से गहरी मुद्रा है। वह चुनता नहीं, जिसको कृष्णमूर्ति च्वायसलेसनेस कहते हैं—निरति! वह चुनाव नहीं करता। वह न तो कहता है इस तरफ, न कहता है उस तरफ। वह कहता है मध्य में—नेति-नेति। वह कहता है न यह न वह। या तो दोनों, या दोनों नहीं, मैं मध्य में। यही उसका न्यारापन है।

मुद्रा निरति! वह कभी भी अति पर नहीं जाता। न तो वह ज्यादा भोजन करता है और न कम भोजन, वह सम्यक् भोजन करता है।

भोगी ज्यादा करता है। जितनी शरीर की जरूरत है उससे ज्यादा खा जाता है फिर बीमारियां पैदा होती हैं, फिर बीमारियों का इलाज करवाता है। भोगी सम्यक आहार नहीं करता। त्यागी भी सम्यक् आहार नहीं करता। वह कम खाने के पीछे पड़ जाता है। वह कहता है, एक ही बार भोजन करेंगे। अब एक ही बार भोजन शरीर की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। और अगर एक ही बार भोजन करना हो तो बड़ी जटिलताएं हैं, वे समझनी चाहिए।

एक ही बार भोजन करने वाले पशु मांसाहारी हैं, जैसे शेर, सिंह, वे एक ही बार भोजन करते हैं चौबीस घण्टे में—वे मांसाहारी हैं। अगर बन्दर एक ही बार भोजन करे, मरे! बन्दर शुद्ध शाकाहारी है!

शाकाहार का मतलब है कि तुम्हें थोड़े-से शाकाहार से काम न चलेगा, क्योंकि उससे उतनी उर्जा ही न मिलेगी शरीर को।

इसलिए बन्दर दिन भर चाबता ही रहता है। तुम जब पान चबाते हो तो तुम डार्विन के सिद्धांत को सिद्ध कर रहे हो। कि आदमी बन्दर से पैदा हुआ है। तंबाखू चबा रहे हो! कुछ न हो तो बातचीत कर रहे हो। वह भी बन्दर की आदत है।

लेकिन आदमी शाकाहारी है; जैसा बन्दर शाकाहारी है। और डार्विन की बात में सच्चाई है। अब तो शरीरशास्त्री भी राजी होते हैं कि मनुष्य कभी भी मांसाहारी नहीं रहा, क्योंकि उसकी जो अंतड़ियां हैं वे मांसाहारी पशुओं जैसी नहीं हैं। मांसाहारी पशु की बड़ी छोटी आंतड़ी होती हैं। इसलिए तो तुम सिंह का पेट देखते हो कितना छोटा-सा! मांसाहारी है, खाता डट कर है, लेकिन पेट छोटा-सा! उनकी अंतड़ियां बहुत छोटी हैं।

पहलवान कोशिश करते हैं सिंह जैसा पेट बनाने की। तो वे जबरदस्ती छाती को फुलाये जाते हैं और पेट को भीतर खींचे जाते हैं। वह एक तरह की हिंसा है, क्योंकि शाकाहारी उतने छोटे पेट का हो ही नहीं सकता। अंतड़ियां बहुत बड़ी है शाकाहारी की। होनी चाहिए, क्योंकि उसे बहुत आहार करना पड़ेगा। उतना आहार संभाल सके, इतनी लम्बी अंतड़ियां चाहिए। कई फीट लम्बी अंतड़ियां है भीतर गुथी हुई पड़ी हैं।

इसलिए बन्दर धीरे-धीरे खाता रहता है। गाय शाकाहारी है चरती रहती है; भैंस परम शाकाहारी है! वह जुगाली करती रहती। जो चबा लिया उसको भी निकाल कर चबाती रहती है।

अगर आदमी शाकाहारी है तो एक बार भोजन अति है। आदमी अगर शाकाहारी है तो उसे दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा भोजन करना चाहिए, ज्यादा नहीं।

इसलिए तुम बड़ी हैरानी की बात देखोगे जैन दिगम्बर मुनि हैं, वे एक बार भोजन करते हैं! उनके पेट तुम हमेशा बड़े देखोगे। अब यह बड़ी हैरानी की

बात है, जब भी मैं उनकी तस्वीरें देखता हूं, मैं बहुत हैरान होता हूं, कि एक बार भोजन करने वाले आदमी का पेट इतना बड़ा क्यों ? वह ज्यादा खा रहे हैं, जरूरत से ज्यादा खा रहे हैं। क्योंकि उसे चौबीस घण्टे के भोजन की पूरी चेष्टा एक ही बार में कर लेनी है। तो वह अतिशय बोझ डाल रहा है अंतड़ियों पर। अंतिड़यां बाहर आ गई हैं।

जैन दिगम्बर मुनि सुन्दर नहीं मालूम पड़ते, बेहूदे मालूम पड़ते हैं; जैसे पेट के किसी रोग से ग्रसित हों, या गर्भवती स्त्रियां हों। शरीर में अनुपात नहीं मालूम पड़ता; एक अति कर रहे हैं।

नियम तो यह है शाकाहारी के लिए दो तीन बार या अगर और थोड़ा-भोजन ले सके तो चार या पांच बार। थोड़ा-थोड़ा ! जरा-सा ले लिया एक फल खा लिया, बात खत्म ! तब तक उतना पच जाये, फिर दो घण्टे बाद एक फल ले लिया।

पेट पर बोझ न पड़े और पेट पर अति न हो, तो सम्यक आहार होगा।

एक बार भोजन तो स्वभावतः तुम इतना खा लोगे जो चौबीस घण्टे काम दे सके। मांसाहार तो ठीक है क्योंकि थोड़े ही मांस से काम चल जाता है। मांस का मतलब है पका हुआ, तैयार भोजन, पचा हुआ भोजन। दूसरे जानवरों ने तुम्हारे लिए पचा कर तैयार कर दिया।

तुम फल खाओगे, फिर फल को पचाओगे, तब उस पचे हुए फल में से मांस बनेगा। किसी जानवर ने फल खा कर पचा लिया, मांस तैयार कर दिया, तुमने मांस खा लिया। मांस का मतलब है पचा हुआ भोजन। तुम्हें अब ज्यादा करने की जरूरत नहीं। इसलिए छोटी अंतड़ी काफी है। काम दूसरे कर चुके तुम्हारे लिए इसलिए मांसाहार शोषण है। क्योंकि दूसरों से काम लेने का क्या हक ? जहां तक बने अपना काम खुद कर लेना चहिए। पचाने का काम भी दूसरे से लेना शोषण है। इसलिए मांसाहार उचित नहीं है। तुम खुद ही कर सकते हो।

मांसाहार भी अति है, क्योंकि तुम्हारी अंतड़ियां बनी हैं मांसाहार के लिए और तुम्हारा शरीर बना नहीं मांसाहार के लिए। और अगर तुम मांसाहार करोगे तो तुम मिट्टी से बंधे रह जाओगे, क्योंकि मांसाहार इतनी बोझिलता देता कि तुम आकाश में उड़ने की क्षमता खो दोगे। इसलिए समस्त ज्ञानी मांसाहार के विपरीत हो गये, किसी और कारण से नहीं। कोई ऐसा नहीं है कि तुमने

मांसाहार कर लिया तो कोई बहुत महापाप हो गया। आत्मा यो मरती नहीं ; तुमने किसी का शरीर छीन लिया जराजीर्ण वस्त्र थे, इससे कोई बड़ा भारी महापातक नहीं हो गया। लेकिन विरोध का कारण दूसरा है।

कारण यह है कि तुम न उड़ पाओगे आकाश में; फिर तुम्हें 'अवधू गमन मंडल घर कीजै' संभव न होगा। फिर अवधू चारों खाने चित्त जमीन पर पड़े रहेंगे। इतने वजनी हो जाएंगे अवधू कि उड़ न सकेंगे, पंख न लग सकेंगे। शाकाहार पंख देता है। वह किसी दूसरे पर कृपा नहीं है, अपने पर ही कृपा है।

मैं भी पक्ष में हूं कि तुम शाकाहारी होना, लेकिन तुम्हारे कारण ! इसलिए नहीं कि पशुओं को बचाना है कि पक्षियों को बचाना है। तुम कौन हो बचाने वाले ? जो बनाता है वह बचायेगा; जो बनाता है वह मिटायेगा। तुम कौन हो बचाने वाले ? जो बनाता है वह बचायेगा; जो बनाता है वह मिटायेगा। तुम कौन हो अकारण का अहंकार बीच में खड़ा करने वाले ? नहीं, उस वजह से नहीं।

मैं भी शाकाहार के पक्ष में हूं, तुम्हारी बजह से ! नहीं तो तुम कभी आकाश में न उड़ सकोगे। तुम्हारे उड़ने की क्षमता टूट जायेगी। शाकाहार तुम्हें हल्का करेगा। सम्यक् आहार तुम्हें बिलकुल हल्का कर देगा, शरीर का बोझ ही न लगेगा। जैसे अभी पंख मिल जायें तो तुम अभी उड़ जाओ। जमीन तुम्हें खींचेगी नहीं, आकाश तुम्हें उठाएगा।

मुद्रा निरति ! इसलिए कबीर कहते है, मुद्रा तो एक है और वह है निरति। अन-अतिशय, अन-अति, निरति, मध्य में खड़े हो जाना।

न तो ज्यादा भोजन करना, क्योंकि वह भी झुकायेगा एक तरफ; न कम भोजन करना, क्योंकि भूख सतायेगी दूसरी तरफ। भोजन भी मारता है, भूख भी मारती हैं; ठीक मध्य में तृप्ति है। उस तृप्ति पर तुम रुक जाना।

और अपनी तृप्तियों को जो पहचानने लगता है, वह आदमी होश में है। नहीं तो तुम भोजन कर रहे हो, तुम्हें समझ में भी नहीं आता कि कहां रुकें। तुमने होश ही खो दिया; यही पता नहीं चलता, कहां रुकें। जानवर रुक जाते हैं; तुम नहीं रुक पाते। जानवर का पेट भर गया, फिर तुम कितना ही भोजन रख दो, तुम लाख बैंड-बाजे बजाओ, इश्तिहार चिपकाओ, कितना ही प्रलोभित करो कि वह भोजन बड़ा पुष्टिदायी है, फिल्म अभिनेत्रियों को लिवा लाओ और

उनसे प्रचार करवाओ भैंस न सुनेगी। बात खत्म हो गयी। भैंस ज्यादा तुमसे होशप्रण मालूम पड़ती है।

तुमने देखा, भैंस को अगर छोड़ दो तो वह सभी घास न खाएगी। उसका अपना घास है, वही खाएगी, बाकी घास छोड़ती जाएगी। जो उसका भोजन नहीं है, वह नहीं करेगी। सिर्फ मनुष्य ऐसा है जो सभी चीजें खाता, है। कोई पशु सभी चीजें नहीं खाता, क्योंकि सब पशुओं के शरीर के अपने आयोजन है, कि कौन-सी-चीज ठीक बैठती है। सिर्फ आदमी सब खाता है—सब।

ऐसी कोई चीज मैंने नहीं देखी, मैं इसकी खोजबीन करता रहा हूं कि क्या कोई ऐसी चीज है दुनिया में जिसको आदमी नहीं खाता? नहीं; सब चीजें—चींटी खानेवाले लोग हैं, कुत्ता खाने वाले लोग है। मैं अभी तक पा ही नहीं सका ऐसी कोई चीज जिसको कहीं-न-कहीं कोई न कोई मनुष्य-जाति का अंग न खाता हो; हालांकि दूसरे उस पर हंसते हैं।

चीनी सांप खाते हैं। चीन में स्वादिष्ट से स्वादिस्ट भोजनों में सांप एक हैं। अफ्रीका में दीमक, चींटी, चींटे लोग इकट्ठे करके रखते हैं बोरे भर-भर कर फिर उसको तलते हैं और खाते है। बिच्छू खाने वाले लोग हैं; छछूंदर को भी नहीं छोड़ते। कोई ऐसा प्राणी नहीं है जिसको आदमी न खाता हो। कोई ऐसा फल नहीं है जिसको आदमी न खाता हो। कोई ऐसा जहर नहीं हैं जिसका सेवन आदमी न करता हो। सांपों को पाल कर रखते रहे हैं लोग। उससे जीभ कटाते हैं, घड़ी-दो घड़ी को मस्ती आ जाती है।

आदमी खतरनाक जानवर है। उससे ज्यादा खतरनाक कोई भी नहीं है। और असंयमी है, उसने सारा संतुलन खो दिया है। उसे कुछ पता ही नहीं कि क्या भोज्य है, क्या खाद्य है, क्या अखाद्य है। छोटे-छोटे जानवर भी अपनी चीज खाते हैं, आदमी सब खाता है। ऐसा लगता है कि हमें कुछ प्राकृतिक जांच-परख नहीं है। लेकिन वैज्ञानिक इसकी खोज करते रहे हैं कि ऐसा क्यों हुआ, क्योंकि किसी जानवर में ऐसा नहीं हुआ, आदमी में क्यों हुआ? और उन्होंने बड़ी गहरी बात खोजी है, और यह है कि हम छोटे बच्चों के साथ जबरदस्ती करते हैं। उनको कुछ भी खिलाने के लिए मजबूर करते हैं, इसलिए यह उपद्रव पैदा हुआ है।

अमरीका में एक युनिवर्सिटी में—हार्वर्ड में, उन्होंने प्रयोग किया छोटे बच्चों पर कि सब भोजन रख दिया और छोटे बच्चों को छोड़ दिया—बिलकुल

छोटे बच्चे! कि वे खाएं जो उनको खाना है। यह प्रयोग कोई छह महीने तक चलता था। वे बड़े चकित हुए। बच्चे वही खाते हैं जो खाने-योग्य है। तुम हैरान होओगे, क्योंकि कोई स्त्री राजी न होगी कि यह बात सच है, क्योंकि बच्चे आइसक्रीम मांगते हैं जो खाने-योग्य नहीं हैं; मिठाई मांगते है जो खाने योग्य नहीं है। लेकिन यह बच्चे तुम्हारे इनकार करने की वजह से मांगते हैं। यह बच्चे नहीं मांगते।

हार्वर्ड में जो प्रयोग हुआ वह बड़ा क्रांतिकारी है। छह महीने का अनुभव यह हुआ कि बच्चे वही खाते हैं जो जरूरी है, जो शरीर के लिए जरूरी है। और यह भी बड़ी अनूठी बात पता चली है कि अगर बच्चा बीमार है तो वह खाता नहीं। मां-बाप ज़बरदस्ती करते हैं कि खाओ।

कोई जानवर बीमारी में नहीं खाता, क्योंकि बीमारी में उपवास उपयोगी है। शरीर वैसे ही रुग्ण है, उस पर और भोजन का बोझ डालना और पचाने की प्रक्रिया को थोपना अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। वह बीमारी आदमी के सिरे पर और पत्थर रखकर उसको ढोने के लिए कहना है।

बीमार आदमी स्वभावतः भोजन न लेगा। अगर बच्चों की सुनी जाये तो बच्चे भोजन न करेंगे। बच्चे को सर्दी-जुकाम है, वह खाना नहीं चाहता; मां-बाप कहते हैं कि खाना पड़ेगा, नहीं तो कमजोर हो जाओगे। एक दो दिन नहीं खाने से कोई दुनिया में कमजोर नहीं हुआ। आदमी तीन महीने बिना खाये जी सकता है, मरता नहीं। तीन महीने के बाद मौत की संभावना है। तीन महीने लायक सुरक्षित भोजन शरीर में रहता है। कोई जल्दी नहीं। दो-चार दिन बच्चा भोजन न करे, कोई हर्जा नहीं है। उसको स्वभाव से चलने दो।

तो एक तो उन्होंने यह अनुभव किया कि बच्चे बीमारी में भोजन नहीं करेंगे। दूसरी और भी गहरी बात उन्होंने खोजी, जिसका किसी को कभी सपने में भी अनुमान न था, और वह यह थी कि बच्चे को अगर सर्दी-जुकाम है तो वह वही भोजन करेगा जिससे सर्दी-जुकाम मिटता है। या बच्चे को अगर मलेरिया है तो मलेरिया में वही भोजन करेगा जिससे मलेरिया का विरोध है।

अब यह बच्चा कैसे जानता है? क्योंकि न तो बच्चे को पता है मलेरिया का, न पता है उसे भोजन-शास्त्र का; सिर्फ उसकी शुद्ध प्रकृति, जो ठीक है, सम्यक है, उसकी तरफ ले जाती है।

बच्चे शक्कर की तरफ उत्सुक होते हैं, क्योंकि उनके शरीर को शक्कर की जरूरत है, बहुत जरूरत है। उनकी हड्डियां अभी बन रही है। और बच्चे दिन में इतनी दौड़-धूप करते हैं, इतना श्रम उठाते हैं कि कोई आदमी कभी नहीं उठाएगा जिंदगी में। फिर उतनी शक्कर वे पचा डालते हैं। इसलिए तुम्हें समझ में नहीं आता कि इतनी शक्कर बच्चे क्यों मांग रहे हैं ?

तुमने कभी खयाल किया, जैसे तुम हिन्दुस्तान के एक छोटे गांव में जाओगे उतनी मीठी मिठाई मिलेगी। बम्बई में कम-से कम शक्कर होगी, कलकत्ते में कम-से-कम शक्कर होगी; फिर छोटे गांव की तरफ बढ़ो, मिठाई में शक्कर की मात्रा बढ़ने लगेगी। ठेठ देहात में शक्कर ही रह जाती है, बाकी तो दूसरी चीज बहाना है। यह क्यों होता है ? ग्रामीण के लिए ज्यादा शक्कर की जरूरत है। उतना श्रम कर रहा है, उतनी शक्कर पचा लेता है। तुम उतनी शक्कर खाओगे तो डायबीटीज होगी। ग्रामीण उतनी खाता है तो स्वस्थ रहता है, कोई डायबीटीज नहीं होगी। किसी जानवर को डायबीटीज नहीं होती; हो नहीं सकती, क्योंकि वह जितना खाता है उतना पचा डालता है।

छोटे बच्चे शक्कर खाएंगे; उनको जरूरत है। तुम उनको रोकोगे; तुम रोकोगे उससे उनका आकर्षण बढ़ेगा। बच्चों को बड़ा क्रोध आता है कि भगवान कुछ उलटी खोपड़ी का मालूम पड़ता है; सब अच्छी चीजें खतरनाक है—आइसक्रीम, रसगुल्ला—सब अच्छी चीजें जो बच्चे को जंचती हैं; डॉक्टर को नहीं जंचती, उनमें कुछ खराबी है। और सब बुरी चीजें—साग भाजी—अच्छी हैं, उनमें विटामिन हैं। भगवान रसगुल्ले में भी विटामिन रख सकता था, मगर उलटी खोपड़ी ! आइसक्रीम में विटामिन रखने में क्या हर्जा था ?

बच्चों की समझ में नहीं आता; लेकिन बूढ़े जब बच्चों को नियोजित करते हैं तो बूढ़े अपने ढंग से नियोजित करते हैं। जिसका उनको खतरा है, वे समझते हैं; उससे बच्चे को खतरा है। यह बात गलत है।

हार्वर्ड के प्रयोग ने एक बात सिद्ध कर दी कि अगर बच्चों को उसकी नियति, प्रकृति पर छोड़ दिया जावे तो मनुष्य-जाति पुन स्वस्थ आहार करने लगेगी। हम उनको डगमगा देते हैं। जो वे खाना चाहते हैं, खाने नहीं देते। जो वे नहीं खाना चाहते, जबरदस्ती मां डंडा लिये बैठी हैं कि खाओ। क्योंकि मां ने किताब पढ़ी है पाकशास्त्र, जिसमें लिखा है कि किस सब्जी में कितने विटामिन हैं; वह उस

हिसाब से चल रही है। आदमी भोजन भी पाकशास्त्र के हिसाब से कर रहा है !

आदमी प्रेम भी कामशास्त्र के हिसाब से कर रहा है। आदमी की अपनी बुद्धि खो गई है। किताब ही उसको जैसे बुद्धि है। उसके भीतर की क्षमता देखने की समझने की, सब मंदी और धुंधली हो गई है।

मुद्रा निरति ! इसलिए योगी की मुद्रा, कबीर कहते हैं, अति से मुक्त हो जाना है। वह न कम भोजन करता, न ज्यादा। वह सम्यक् आहार करता है। वह न तो कम सोता, न ज्यादा; वह सम्यक् निद्रा लेता है। वह न तो कम बोलता है, न ज्यादा; वह सम्यक् बोलता है। वह न तो कम श्रम करता, न ज्यादा, वह सम्यक् श्रम करता है।

बुद्ध ने आठ नियम कहे हैं, जिनसे सम्यक् जीवन पैदा होता है। वे सारे आठ नियम सम्यक् शब्द से शुरू होते हैं। सम्यक का अर्थ है निरति। बुद्ध कहते हैं सम्यक व्यायाम, सम्यक आहार, सम्यक ध्यान; ध्यान पर भी सम्यक लगाते हैं। क्योंकि कुछ पगले ऐसे हैं कि वे ध्यान ही ध्यान करने लगे हैं, तो वे पागल हो जाएंगे। तुम कितना सह सकते हो ?

अभी चार-छह दिन पहले ही एक सज्जन आये कि ध्यान करते हैं तो पैर सुन्न हो जाते हैं।

'कितनी देर ध्यान करते हो ?'

'सात-आठ घंटे।'

पैर सुन्न नहीं होंगे तो क्या होगा ? सात-आठ घंटे तुम एक ही मुद्रा बैठोगे तो पैरों का क्या कसूर है ? पैर सात-आठ घंटे एक ही मुद्रा में बैठने को बने नहीं। तो अवधू तो नहीं पहुंच पाते 'सुन्न गगन में, पैर पहुंच जाते हैं !

सम्यक् शब्द को मंत्र बना लो। जो भी करो, हमेशा ध्यान रखो कि वह अनति पर चला जाये। मन कहेगा, अति पर ले जाओ, क्योंकि मन अति में जीता है। मन अति है। इसलिए मन तुम्हें हमेशा धकायेगा कि अब क्या बैठे हो घंटे भर, अब दो घंटे बैठो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गधा खरीदा। जिससे खरीदा, उससे पूछा कि भाई इसको कितना खाना-पीना देना है ? उसने बताया; लेकिन मुल्ला को जरा ज्यादा लगा। उसने कहा कि इतना खाना-पीना गधे के लिए ? इतना तो हम अपने लिए भी नहीं···। यह तो बहुत महंगा है। यह आदमी थोड़ा ज्यादा

बता रहा है, बढ़-चढ़ कर बता रहा है, गप्प हांक रहा है। गधे को और इतना खाना-पीना ! इतना तो मैं अपनी पत्नी को भी नहीं देता।

तो उसने कहा कि पहले इसे अपने प्रयोग करके जांच कर लें, कि गधा कितने में जी सकता है। तो उसने आधा·· जितना बताया था, आधा दिया। गधा जी गया। उसने कहा कि यह आदमी धोखा दे रहा था। और आधा कर दिया, आधे में से आधा कर दिया। गधा फिर भी जी गया। उसने कहा कि हद हो गई। वह आदमी बिलकुल बेईमान था ! अब उसने आधे में से आधे में से आधा कर दिया, यानी अब दो ही आने बचा। उसमें भी गधा जी गया। उसने कहा, हद हो गई ! यह तो आदमी मेरा दिवाला निकलवा देता। उसने और आधा कर दिया—एक ही आना ! गधा फिर भी जी गया। उसने दूसरे दिन दो पैसा कर दिया। फिर एक पैसा कर दिया। जिस दिन उसने एक पैसा किया, गधा अचानक मर गया। नसरुद्दीन ने कहा 'हद हो गई। इतनी जल्दी भी क्या थी ? अगर एक दिन और जी जाता तो बिना भोजन के रहने की कला सीख जाता !

'बस एक दिन की कमी रह गई थी कि एक महान घटना घट जाती', नसरुद्दीन ने कहा, 'कि गधा बिना भोजन के जी जाता। वह पहले ही मर गया; प्रयोग पूरा न हो पाया।'

नसरुद्दीन जो गधे के साथ कर रहा है, बहुत-से लोग अपने साथ कर रहे हैं। लोग न मालूम क्या-क्या उलटा-सीधा करते रहते हैं।

प्रकृति की सुनो, शरीर की सुनो ! शरीर फौरन खबर देता है। शरीर बहुत बुद्धिमान है, तुम्हारे मन से ज्यादा। क्योंकि तुम्हारा मन क्या जानता है ? शरीर, न मालूम कितने-कितने रूपों में रहा है; उसने बड़ी प्रज्ञा इकट्ठी कर ली है; उसके रोएं-रोएं में प्रज्ञा छिपी है। तुम शरीर की सुनो।

जब भी शरीर और मन में द्वंद्व हो, तुम शरीर को सुनना। क्योंकि मन तो समाज के द्वारा आरोपित है; शरीर प्रकृति से आया है। तुमने मन की सुनी, तुम अति पर चले जाओगे। तुमने शरीर की सुनी··· शरीर फौरन कहता है। भोजन तुम कर रहे हो, शरीर फौरन कहता है कि बस, रुको। आवाज कितनी ही धीमी हो, बराबर आती है कि बस रुको। लेकिन जीभ कहती है, मन कहता है, थोड़ा स्वादपूर्ण है भोजन, आज थोड़ा ज्यादा कर लिया, क्या हर्ज है ?

तुम मन की सुनते ही। मन की सुनोगे, गड्ढे में पड़ोगे। और जब मन तुम्हें

ज्यादा खिला-खिलाकर ज्यादा भर देगा, स्थूल कर देगा, चर्बी बढ़ जाएगी, चल न सकोगे, उठ न सकोगे तब मन कहेगा, अब उपवास कर लो, उरलीकांचन चले जाओ; प्राकृतिक चिकित्सा की जरूरत है। प्राकृतिक बुद्धि की जरूरत है; प्राकृतिक चिकित्सा की जरूरत पड़ती है।

लेकिन कोई चिकित्सक तुम्हें बुद्धि नहीं दे सकता। तुम्हें वापस ला सकता है—उपवास करवा देगा, वाष्प-स्नान करवा देगा, शरीर से पसीना बहा देगा, भूखा मारेगा, कुछ दिन सतायेगा, थोड़ा-बहुत रास्ते पर ला देगा। घर पहुंचोगे; चार-छह दिन में फिर वापस ! क्योंकि बुद्धि कोई प्राकृतिक चिकित्सा तुम्हें नहीं दे सकती। फिर तुम वही हो जाओगे।

प्राकृतिक बुद्धि चाहिए ! प्राकृतिक बुद्धि का अर्थ है शरीर की सुनने की क्षमता चाहिए। जब शरीर कहे रुक जाओ, तब लाख मन कहे कि स्वादिष्ट भोजन है, थोड़ा और कर लो, मत सुनना। अन्यथा यही मन किसी दिन तुम्हें 'जैन-मुनि' बनवा कर रहेगा। कि कहेगा, अब उपवास करो। पहले भी तुमने इसकी मान कर भूल की, तब तुम भोगी बन गए, अब तुम फिर इसकी मानकर भूल करोगे, त्यागी बन जाओगे।

'अवधू जोगी जग थें न्यारा !'
'मुद्रा निरति सुरति कर सींगी'

—दो सूत्र कबीर कह रहे हैं : मध्य में ठहर जाना तुम्हारी मुद्रा हो और सुरति तुम्हारा वाद्य।

सुरति यानी स्मृति। सुरति यानी होश, जागरण, अमूर्च्छा, अवेयरनेस। मध्य में ठहर जाना तुम्हारी मुद्रा और होश सम्हाले रखना तुम्हारा वाद्य। फिर जो नाद पैदा होता है: वह जो एक हाथ की ताली बजती है—नाद न षंडै धारा—फिर उसमें खंड नहीं पड़ते, फिर नाद अखंड बहता है ! फिर वह धारा अजस्त्र बहती है फिर उसमें खाली जगह नहीं आती। फिर संगीत टूटता नहीं ! फिर लय बिखरती नहीं। फिर द्वंद्व बंधा ही रहता है। फिर तारी लग जाती है। फिर तुम परम आनंद में सदा-सदा को प्रविष्ट हो जाते हो—जहां से कोई लौटना नहीं है।

'मुद्रा निरति सुरति करी सींगी, नाद न षंडै धारा'
'बसै गगन मैं दुनि न देखै, चेतनि तौकी बैठा।

—और तब तुम चैतन्य में विराजमान हो जाते हो। 'चेतनि चौकी बैठा, बसै गगन मैं—और तब तुम शून्य में प्रविष्ट हो जाते हो, आकाश में! 'दुनि न देखै' फिर कोई दुई नहीं दिखाई पड़ती। फिर तो दोनों किनारे भी नदी के ही अंग हो जाते हैं। फिर तो अतियां भी मध्य में ही समा जाती हैं। फिर तो विपरीत भी एक के ही दो रूप हो जाते हैं।

'मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा
बसै गगन मैं दुनि न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि आकास आसण नहिं छाड़े, पीवै महारस मीठा।'

और भीतर चेतना आकाश में बढ़ती जाती है और शरीर आसन में जमा रहता। दिया पृथ्वी पर और चेतना आकाश में। दिया जैसा जमा रहता है पृथ्वी पर ऐसा ही शरीर का आसन पृथ्वी पर—सब अर्थों में। शरीर जमा रहता है पृथ्वी पर-सम्यक भोजन करता है, सम्यक निद्रा लेता है, सम्यक श्रम करता है, जम जाता है पृथ्वी पर आसन। चेतना होश से भरती है, और चैतन्य होती जाती है, ज्योति ऊपर उठने लगती है। तुम एक दिया बन जाते हो। पृथ्वी तुम्हारा आधार, आकाश तुम्हारी आत्मा हो जाती है।

'चढ़ि आकाश आसण नहिं छाड़े, पीवै महारस मीठा'
परगट कंथा माहे जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।
सहंस इकीस छह सै धागा, निहचल नाकै पोवै।

और फिर ऊपर से चाहे गुदड़ी हो, भीतर हीरा होता है, ऊपर से चाहे फिर कुछ भी न हो—'परगट कंथा माहे जोगी' फिर चाहे योगी बाहर से गुदड़ी लिपटा हुआ जीये, 'दिल है दरपन जोवै।'—लेकिन भीतर हृदय का दर्पण स्वच्छ हो जाता हैं, उसमें परमात्मा की झांई पड़ने लगती है।

'सहंस इकीस छह सै धागा, निहचल नाकै पोवै।'

इक्कीस हजार छह सौ नौ नाड़ियां हैं शरीर में। कैसे योगियों ने जाना, यह एक अनूठा रहस्य है! क्योंकि अब विज्ञान कहता है, हां इतनी ही नाड़ियां हैं। और योगियों के पास विज्ञान की कोई भी सुविधा न थी, कोई प्रयोगशाला न थी, जांचने के लिए कोई एक्स-रे की मशीन न थी। सिर्फ भीतर की दृष्टि थी, पर वह एक्स-रे से गहरी जाती मालूम पड़ती है। उन्होंने बाहर से किसी की लाश को रख कर नहीं काटा था, कोई डिसेक्शन, कोई विच्छेद करके नहीं पहचाना था

कि इतनी नाड़ियां है। उन्होंने भीतर अपनी ही आंख बंद करके, ऊर्जा जब उनके तृतीय नेत्र में पहुंच गई थी और जब भीतर परम प्रकाश प्रकट हुआ था, उस प्रकाश में ही उन्होंने गिनती की थी। उस प्रकाश में ही उन्होंने भीतर से देखा था।

वैज्ञानिक घर के बाहर से झांक रहा है। उसकी पहचान अजनबी की है, बहुत गहरी नहीं। योगी ने घर के मालिक की तरह देखा था, भीतर से देखा था। फर्क है। तुम कमरे के बाहर घूम सकते हो, दीवालों की जांच कर सकते हो, लेकिन जो कमरे के भीतर रहता है, वह भीतर की दीवाल को देखता है। योगी ने भीतर के प्रकाश में, भीतर जब ज्योति जली, तो भीतर की नाड़ी-नाड़ी को गिन लिया था।

इक्कीस हजार छह सौ नाड़ियां हैं। अभी सब अलग-अलग है। अभी तुम ऐसे हो जैसे मनकों का ढेर। अभी तुम्हारे मनके माला नहीं बने, किसी ने धागा नहीं पिरोया, अभी तुम मनकों का ढेर हो। धागा भी रखा है, मनके भी रखे हैं, माला नहीं है। इसलिए तो तुम भीड़ हो! तुम एक नहीं हो, अनेक हो। तुम्हारे भीतर पूरा बाजार है, हजारों तरह के लोग तुम्हारे भीतर बैठे हैं। कोई कुछ कहता, कोई कुछ कहता।

एक कहता है चलो मंदिर की तरफ, दूसरा वेश्यालय ले जाता है। जब तुम वेश्या के घर बैठे हो तब भी मन के भीतर कोई राम-राम जपता है। मंदिर के भीतर बैठे हो, राम-राम जप रहे हो, भीतर वेश्या की मूर्ति बनती रहती है। ऐसा तुम खंड-खंड हो, टुकड़े-टुकड़े हो। हजार तरफ तुम बह रहे हो। तुम एक धारा नहीं हो जो सीधी सागर की तरफ जा रही है। तुम मरुस्थल में बिखरे हुए, छितरे हुए हो।

तुम्हारी इक्कीस हजार छह सौ नाड़ियां अभी माला नहीं बनीं, क्योंकि किसी ने धागा नहीं पिरोया है। वह धागा क्या है? उस धागे का नाम ही सुरति है। जिस दिन तुम सारी नाड़ियों को बोधपूर्वक देख लोगे, 'सहंस छह सै धागा, निहचल नाक पोवै।' और जिसकी मुद्रा हो गई निरति की और जिसका वाद्य बज गया सुरति का, वह धागे से पिरो देता है सारी नाड़ियों को। वह अखंड एक हो जाता है। उसके भीतर एक का जन्म होता है।

'ब्रह्म अगनि में काया जारे, त्रिकुटी संगम जागै।'

तब उसकी काया, तब उसकी देह ब्रह्म की अग्नि में जलकर भस्मी-भूत हो जाती है। प्रकृति की अग्नि में तो तुम बहुत बार जल कर भस्मीभूत हुए हो, अनेक बार मरे हो, और देह को चिता पर चढ़ाया है। योगी भी एक चिता पर चढ़ता है; लेकिन वह चिता साधारण अग्नि की नहीं, वह ब्रह्म अग्नि की है।

'ब्रह्म अगनि में काया जारै'—और ब्रह्म-अग्नि में सब काया, काया की सारी संभावना, बीज, सब जल जाते हैं।

'त्रिकुटी संगम जागै'—यहां काया खोती जाती है, पृथ्वी से संबंध छूटता जाता है, ज्योति उठ जाती है, दीप को छोड़ देती है और भीतर·· यह तो बाहर की घटना है; भीतर, 'त्रिकुटी संगम जागै।'

त्रिकुटी योगियों का बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। त्रिकुटी का अर्थ होता है: द्रष्टा, दृश्य और दर्शन-इन तीन धाराओं का मिल जाना। इन्हीं तीन के आधार पर प्रयाग को हमने संगम कहा है, उसको तीर्थ बनाया है। उसको तीर्थ बनाने का कुल कारण इतना है कि वह ठीक इन तीन की तरह की सूचना देता है। सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती, गंगा-यमुना दिखाई पड़ती है। सरस्वती अदृश्य है। ऐसे ही दृश्य और द्रष्टा दिखाई पड़ते हैं; दर्शन अदृश्य है, वह दिखाई नहीं पड़ता। वह दोनों के बीच में बह रहा है। मैं तुम्हें देखता हूं, तुम भी दिखाई पड़ रहे हो, मैं भी दिखाई पड़ रहा हूं, लेकिन हम दोनों के बीच जो घटना घट रही है, वह नहीं दिखाई पड़ती—वह सरस्वती है। वह अदृश्य धारा।

और जब इन तीनों का मिलन होता हैं—'त्रिकुटी संगम जागै।' जब दृश्य दर्शन और द्रष्टा तीनों एक हो जाते हैं, तब महा जागरण होता है, वही महापरि-निर्वाण है। फिर कोई लौटना नहीं। काया जल जाती है ब्रह्म-अग्नि में। उसका उपयोग पूरा हो गया। अब कोई नया घर नहीं बनाना पड़ेगा, अब कोई नयी देह लेनी न पड़ेगी, अब कोई नये गर्भ में गिरना न पड़ेगा, अब पृथ्वी की तरफ गिरना बंद हुआ, अब ज्योति मुक्त गई दिये से। अब कमल कीचड़ में रहने को राजी नहीं हैं, अब कमल को कीचड़ में रहने की जरूरत भी नहीं है, अब कमल उठ गया। अब कमल यात्रा पर निकल गया, उसको पंख लग गये!

'ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहे कबीर सोई जोगीस्वर, सहज सुनी लौ लागौ॥

अब तो सिर्फ सहज शून्य में ही लौ लग जाती है, अब तो शून्य में ही विलीन

होता जाता है!

'कहै कबीर सोई जोगीस्वर'—वही योगी हैं।

अवधू जोगी जग थै न्यारा'।

योग महानतम कला है—जीवन की भी और मरण की भी। योग पहले सिखाता है, कैसे जीओ, फिर योग सिखाता है, कैसे मरो।

'ब्रह्म अगनि में काया जारै'—'पहले योग सिखाता है कैसे शरीर का सहारा लो, फिर योग सिखाता है, कैसे शरीर से मुक्त हो जाओ। पहले योग सिखाता है, कैसे जमीन पर आसन को जमाओ, ताकि ज्योति निश्चल उठने लगे। फिर योग सिखाता है, कैसे जमीन को छोड़ दो, शून्य गगन में, महाशून्य में कैसे खो जाओ!

वह खो जाना ही पा लेना है। वह मिट जाना ही हो जाना है। इधर तुम मिटे, उधर परमात्मा हुआ। इधर तुम न रहे, उधर उसके मंदिर का द्वार खुला। तुम ही बाधा हो, झीनी-सी बाधा, पतला-सा घूंघट!

घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे।

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाने सब कोई ।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ।।
गावन हारा कदे न गावै अनबोल्या नित गावै ।
नटवर पेखि पेखना पेखै अनहद वेन बजावै ।।
कहनी रहनी निज तत जानै, यहु सब अकथ कहानी ।
धरती उलटि आकासहि ग्रासै यहु पुरिसा की वाणी ।।
बाज पिलावै अमृत सोख्या नदी नीर भरि राख्या ।
कहे कबीर ते बिरला जोगी धरणि महारस चाख्या ।।

2. बूझै बिरला कोई

17 मई, 1975, प्रातः 8

जीवन के प्रति एक तो दार्शनिक की दृष्टि है और एक धार्मिक की। दार्शनिक की दृष्टि परिधि को छू पाती है, केन्द्र तक उसका प्रवेश नहीं। वह बाहर-बाहर से देखता है। कितना ही सोचे कितना ही विचारे, सोच-विचार कभी केंद्र तक जाता नहीं। केन्द्र तक तो केवल महाशून्य की अवस्था ही जाती है; जहां न कोई विचार है, न विचार की कोई तरंग है। विचार नहीं, केन्द्र तक तो केवल ध्यान जाता है। विचार नहीं, केन्द्र तक तो केवल समाधि की पहुंच है।

दार्शनिक बहुत सोचता है, सिद्धान्त निर्मित करता है, शास्त्र बनाता है, लेकिन उसके सभी शास्त्र अधूरे होंगे। और सभी शास्त्र—उनके शब्द कितने ही गहरे मालूम पड़ें, उथले होंगे।

धार्मिक व्यक्ति विचारता नहीं, विचार को छोड़ता है। तर्क नहीं करता; चिंतन-मनन नहीं करता, उन सभी तरंगों को शांत करता है। धार्मिक व्यक्ति केन्द्र पर स्थिर होने की चेष्टा करता है। उस स्थितरता में ही जीवन के परिपूर्ण रहस्य का द्वार खुल जाता है। समाधि द्वार है।

और धार्मिक जो जान पाता है, वह बड़ा अनूठा है। वह उलटबांसी जैसा लगता है, क्योंकि हम सब दार्शनिक से प्रभावित हैं। इसे तुम ठीक से समझ लो।

हमारे मन पर दार्शनिक की बड़ी छाप है। विचारशील लोगों ने हमें खूब आक्रांत कर रखा है। स्वभावतः उनके तर्क बड़े प्रभावशाली मालूम पड़ते हैं और उनके आधार पर उनके सिद्धांत हमारे मन पर गहरी लकीरें छोड़ जाते हैं। इस लिए कबीर जैसे व्यक्तियों की वाणी उलटबांसी लगती है, कि क्या उलटी बातें कह रहे हैं?

वे उलटी लगती हैं, क्योंकि तुम उलटे खड़े हो। जैसे कोई आदमी शीर्षासन

कर रहा हो, उसे सारी दुनिया उलटी चलती मालूम पड़ती है। वह हैरान होता है कि सारी दुनिया उलटी क्यों चल रही है? दुनिया उलटी नहीं है। वह स्वयं उलटा ही खड़ा है। अस्तित्व तो सदा से सीधा-साफ है, तुम तिरछे हो। अस्तित्व तो कहीं भी तिरछा नहीं है। उसकी कहानी तो बड़ी साफ है, सुस्पष्ट है। उसका रहस्य तो बिलकुल खुला रहस्य है। द्वार-दरवाजे बंद भी नहीं हैं। अगर तुम प्रवेश नहीं कर पा रहे, तो तुम्हारी आंखें ही किन्हीं शब्दों के द्वारा बंद हैं। किन्हीं विचारों, शास्त्रों में दबी हैं।

और विशेषकर इस देश तो बड़ा दुर्भाग्य घटित हो गया है। हजारों साल का पाण्डित्य है। उसने तुम्हें स्पष्ट लकीरें दी हैं। उन लकीरों से भिन्न को तुम मानने को भी राजी नहीं हो सकते। इसलिए पंडितों की नगरी काशी में कबीर उलटे मालूम पड़ने लगे। लोग कहने लगे कबीर की बात कर रहे हो? सिर फिर गया है? ये तो उलटबासियां हैं। ये तो पहेलियां है, जो सुलझाई नहीं जा सकतीं।

क्या है पहेली कबीर में? क्योंकि कबीर पूरे को देखते हैं। तुम अधूरे को देखते हो। तुम आधे को देखते हो। आधे के आधार पर तुम पूरे की कल्पना करते हो। तुम लकीर के फकीर हो। फिर लकीर का फकीर एक दफा आदमी हो जाए, तो उस विस्तार का कोई अन्त नहीं है।

मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुनी है। सच न भी हो, फिर भी सच मालूम होती है। चूहों की बढ़ती के कारण सरकार बहुत बेचैन और व्यथित हो गई। क्योंकि पांच चूहे उतना भोजन कर जाते हैं, जितना एक आदमी। और आदमी से कई गुने ज्यादा चूहे हैं। कम से कम पच्चीस गुने ज्यादा चूहे हैं भारत में। तो घबराहट तो स्वाभाविक है। लेकिन चूहे जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा उठाना भी खतरनाक है। क्योंकि इस मुल्क की बुद्धि का कोई हिसाब लगाना मुश्किल है।

तो मैंने सुना है, कि इंदिरा गांधी ने मुल्क के सारे विचारशील नेताओं को इकट्ठा किया कि पहले हम सोच लें फिर कुछ कदम उठाएं। और इंदिरा ने कहा कि इन चूहों को मार डालना अब एकदम जरूरी है। एक महाअभियान चाहिए कि सब चूहे समाप्त कर दिए जाएं।

तत्क्षण कोलाहल और उपद्रव शुरू हो गया, जैसा कि भारत के सभी संसदों में, विधान सभाओं में मचता है, वहां भी मच गया। घड़ी दो घड़ी तो पता ही नहीं रहा, कि क्या हो रहा है?

बामुश्किल समझ में आया कि श्री अटलबिहारी बाजपेयी कह रहे कि यह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि चूहा गणेशजी का वाहन है! क्या तुम गणेशजी को वाहन से च्युत करना चाहते हो? बिना वाहन के गणेशजी कैसे चलेंगे? और यह तो सरासर अधार्मिक है। यह तो हिन्दू धर्म की हत्या है। तो यह कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, कि चूहे की हत्या हो जाए।

कोई सुझाव मांगा गया, कि फिर कुछ उपाय? तो उन्होंने कहा, जैसा आदमियों के लिए हम कर रहे हैं, परिवार नियोजन का प्रचार किया जाए। हर चूहे के बिल पर लिखा जाए, 'हम दो हमारे दो।' समझाने-बुझाने की जरूरत है। हत्या नहीं हो सकती।

लेकिन तभी जयप्रकाश ने खड़े होकर कहा, कि यह कभी नहीं होगा। गांधी-विनोबा के देश में परिवार नियोजन? यह तो अनीति का मार्ग है। इससे तो लोग भ्रष्ट होंगे, भ्रष्टाचार फैलेगा। और डर यह है कि तुम चूहों के लिए तो प्रचार करोगे लेकिन गणेशजी तक भ्रष्ट हो सकते हैं, सुनते-सुनते परिवार नियोजन। क्योंकि परिवार नियोजन का अर्थ है, कि स्त्री को बच्चा पैदा न होने का भय तो रह नहीं जाता। उसी भय पर तो तुम्हारी सारी सभ्यता खड़ी है। उसी भय पर तो तुम्हारे नीति-नियम खड़े हैं। स्त्री पकड़ी जा सकती है अगर वह किसी दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध बनाए। एक बार स्त्री मुक्त हो जाये, भय न रहे तो फिर कौन नियम रोकेगा? चूहे तो बिगड़ेंगे ही, डर यह है कि गणेशजी तक बिगड़ जाये।

तो जयप्रकाश ने कहा, सर्वोदयी इसको कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे। पूछा गया क्या किया जाए? तो उन्होंने कहा, बजाय परिवार नियोजन के अभियान के ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाए। ब्रह्मचर्य की शिक्षा—गांधी, विनोबा दोनों यही कहते हैं। बजाय तख्तियां लगाने के परिवार नियोजन के, ब्रह्मचर्य के वचन लिखे जाये, कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

किसी ने डरते-डरते कहा कि लेकिन चूहे अशिक्षित हैं।

तो जयप्रकाश ने कहा कि विस्तार में जाने का मेरा प्रयोजन नहीं। हम केवल लोकनायक हैं, लोकनेता नहीं। हम मार्ग दर्शन देते हैं। पूर्ण क्रांति की

विस्तार की बातें आप लोग सोचें। यह सरकार का फर्ज है, कि वह पहले उनको शिक्षित करें—चूहों को फिर उनको ब्रह्मचर्य समझाएं। सिद्धान्त की बात हमने कह दी। बाकी विस्तार में जाना सरकार का कर्त्तव्य है। अन्यथा सरकार किस लिए है?

श्री अटल बिहारी बाजपेयी 'यह तो हिंदू धर्म पर पूरा आघात है। यह कभी बर्दाश्त न किया जाएगा। हिन्दुओं, इकट्ठे हो जाओ! 'तुम्हारा धर्म खतरे में है।'

और तब कम्यूनिस्ट नेता श्रीपाद अमृत डांगे ने कहा : 'प्रश्न चूहों के मारने या न मारने का नहीं है। प्रश्न है कि यह गणेश कौन हैं जो गरीब सर्वहारा चूहों पर चढ़ा बैठा है! इस गणेश को नीचे उतारना होगा। यह वर्ग संघर्ष है। गणेश मुर्दाबाद! चूहों, विश्व के चूहों, इकट्ठे हो जाओ! तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं सिवाय गणेश के बोझ के।'

श्री जयप्रकाश बोले : 'मैं क्रांति चाहता हूं। चूहों में ब्रह्मचर्य का व्रत फैलाने से ही यह हो सकेगा। महात्मा गांधी और संत विनोबा के सारे जीवन का संदेश ब्रह्मचर्य है। और विस्तार की बातें मुझसे मत पूछो। मैं क्षुद्र बातों में उलझता ही नहीं। मैं तो केवल और केवल पूर्ण क्रांति के पक्ष में हूं।'

और तभी लकीरों के फकीरों में मारपीट शुरू हो गई। जूते-चप्पल फेंके जाने लगे। पूर्ण क्रांति का ऐसा शुभ आरंभ देखकर श्री जयप्रकाश अति प्रसन्न हुए और संसोपा नेता राजनारायण ने बीच में कूदकर युद्ध शुरू कर दिया।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सम्मेलन के अपेक्षित अंत को देखकर सभा भवन के बाहर जाने लगीं। तभी श्री मोरारजी देसाई की आवाज उन्हें सुनाई पड़ी। 'मैं अल्टीमेटम देता हूं कि वर्षा के पूर्व महात्मा गांधी के विचारानुसार चूहों में ब्रह्मचर्य और नशाबंदी का प्रचार प्रारम्भ न किया गया तो मैं आमरण अनशन प्रारम्भ कर दूंगा।'

वह सभा जैसी खत्म हो गई होगी, वैसी ही सब सभाएं इस मुल्क में खत्म होती हैं। लकीरें हैं! एक दफा लकीर को छू दो, फिर होश लोग खो देते हैं। इतना कहना काफी है, कि चूहा वाहन है; फिर कोई होश की बात नहीं हो सकती। इतना कहना काफी है, कि गांधी विनोबा क्या कहते हैं, कि

यह देश विनोबा का है। जैसे यह देश उन्हीं का है, और किसी का नहीं है।

लकीर से बंधकर जीने वाला व्यक्ति सब भांति अन्धा हो जाता है। और सभी लोग विचार की लकीरों से बंधे हैं।

इस देश की सबसे गहरी विचार की लकीर है, कि संसार माया है। यह सच है। यह परम अनुभव है कि संसार माया है। लेकिन यह कोई सिद्धांत नहीं है। यह तो सिद्धावस्था की प्रतीति है। अगर तुमने इसे सिद्धान्त की तरह समझा कि संसार माया है तो तुम अड़चन में पड़ोगे। तब तुम लड़ना शुरू कर दोगे। और जिससे तुम लड़ रहे हो, वह स्वयं परमात्मा है। तब तुम्हारा पूरा जीवन उलझ जाएगा।

इस देश के सारे शास्त्र कहते हैं, कि द्वंद्व के ऊपर उठना है। दो के पार जाना है। एक को पाना है। अद्वैत को पाना है। वही परम सत्य है। वह तुम्हारे मन में लकीर की तरह बैठ गई है बात। इसलिए किसी भी चीज की तुम्हें निंदा करनी हो, तो तुम कह दो कि यह तो द्वंद्व के भीतर है। बात निंदित हो गई।

इसलिए कबीर ने जब ये बचन कहे, 'तो बड़ी कठिनाई खड़ी हुई होगी।' 'कहे कबीर सो बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या'—जिसने पृथ्वी के महारस को चखा, वह महायोगी।

लेकिन तुम्हारे योगी तो कह रहे हैं, कि धरती, धरती का रस, पदार्थ, पदार्थ का रस, शरीर, शरीर का रस सब ताज्य है। इनको तो छोड़ना है। यह तो माया है। और कबीर कहते हैं, जिसने धरणी का महारस चख लिया, वह कोई बिरला जोगी है। वह कोई अद्वितीय जोगी है।

तुमने सदा सुना हैं, कि पदार्थ को छोड़ना है और कबीर कह रहे हैं कि पदार्थ में महारस छिपा है। पदार्थ में परमात्मा छिपा है। पदार्थ को छोड़ना नहीं हैं, जानना है। पदार्थ से भागना नहीं है, जीना है। शरीर में अशरीरी छिपा है। शरीर को काटना और गलाना नहीं है, शरीर को मिटाना नहीं है, शरीर तो मन्दिर है। वहीं परमात्मा की प्रतिमा विराजमान है। वह तो सिंहासन है। उस पर प्रभु बैठा है। शरीर को पहचानना है, जानना है, जीना है। शरीर के भीतर गहन में प्रवेश करना है। शरीर की परिधि नहीं, उसका केन्द्र भी उपलब्ध

हो जाए। जिस दिन तुम शरीर के केन्द्र को जान लोगे, कि वह परमात्मा है, उस दिन तुम पाओगे कि शरीर में भी बड़े रस छिपे हैं। छोड़ने योग्य कुछ भी नहीं है।

स्वाद को छोड़ना नहीं है और अस्वाद को साधना नहीं है। स्वाद को इस परिपूर्णता से जीना है, कि स्वाद में ही छिपा अस्वाद मिल जाए। तब तो अस्वाद जैसा नहीं होता, परम स्वाद जैसा होता है।

गांधी के आश्रम में ग्यारह नियमों में एक नियम था, अस्वाद। इस तरह भोजन करो कि उसमें स्वाद न आए। तो भोजन खराब करके करो—नमक मत डालो। और ज्यादा ही योग सिर पर चढ़ गया है, तो थोड़ी सी नीम चटनी मिला लो, ताकि भोजन भ्रष्ट हो जाए, ताकि स्वाद न आए। गांधी जी नीम की चटनी के बगैर भोजन ही नहीं करते थे। वह भोजन को खराब करने की व्यवस्था थी। सोचते थे, यह अस्वाद है।

यह अस्वाद नहीं है, यह केवल जीभ को मारना है। अस्वाद तो उन्हें उपलब्ध हुआ, उन ऋषियों को, जिन्होंने कहा है उपनिषदों में 'अन्नम् ब्रह्म।' जिन्होंने जाना है अन्न में ब्रह्म छिपा है, उन्हें अस्वाद उपलब्ध हुआ। जिन्होंने अन्न को इस परिपूर्णता से, इस समाधिपूर्णता से, इस समाधिपूर्वक ग्रहण किया कि अन्न में छिपे हुए ब्रह्म की जिन्हें झलक मिलने लगी—धरणी महारस चाख्या, वे परमयोगी हैं। उन्होंने पृथ्वी को छोड़ा नहीं, पृथ्वी के महारस को चख लिया।

क्योंकि जिसने बनाई है सृष्टि, वह बनाने वाले से भिन्न नहीं हो सकती। और शत्रु तो हो ही नहीं सकती। विरोध में तो हो ही नहीं सकती। सीढ़ी ही बनने को बनाई गई है। सृष्टि में छिपा सृष्टा। कृति में छिपा है करता। काव्यों में छिपा है कवि। नृत्य में छिपा है नर्तक। वह भिन्न नहीं है। परमात्मा यहां पत्ते-पत्ते पर छिपा है। तुमने जिसे बुरा कहा है, तुमने जिसकी निंदा की है, वह भी परमात्मा है। और परमात्मा की निंदा करके तुम परमात्मा को न पा सकोगे। हां, तुमने एक अपना परमात्मा बना लिया है सिद्धान्तों का, जिसकी तुम मन्दिर में पूजा करते हो। असली, जीवन्त परमात्मा की तुम निंदा करते हो। झूठे आदमी द्वारा निर्मित परमात्मा की तुम पूजा करते हो।

तुम किसी हरे वृक्ष के सामने हाथ जोड़कर झुके हो? कि जब कोई वृक्ष

फूलों से भरा हो, हवाओं में नाचता हो, तब तुमने घुटने टेककर वहां प्रार्थना की है? कि जब आकाश में तारे भरे हों, तब तुम पृथ्वी पर लेटकर उस अनिर्वचनीय के भजन से भरे हो? तुमने तारों में उसकी आंखों को झलकते देखा? कि फूलों में उसकी सुवास उठते देखी?

नहीं, तुम बिल्कुल अन्धे हो। तुम भागे जा रहे हो मन्दिर-मस्जिद की तरफ। तुम कहते हो, वहां परमात्मा की पूजा करनी है। और यहां कौन है? चारों तरफ कौन है? पक्षियों के कण्ठों में कौन गा रहा है? वृक्षों में कौन फूल बना है? झरनों में किसका कलकल नाद है? ये उसी एक ओंकार की अनेक-अनेक अभिव्यक्तियां हैं। ये उसी एक के अनेक-अनेक रूप हैं। तुम कहां भागे चले जाते हो? तुम किसी की पूजा करने जा रहे हो? तुम जहां हो, वहीं वह मौजूद है। तुम्हारे चारों तरफ उसी ने तुम्हें घेर रखा है।

उपनिषद कहते हैं, वह परमात्मा दूर से भी दूर, और पास से भी पास है। दूर से दूर—अगर मन्दिरों में खोजा, पास से पास—अगर आंख खुली, और चारों तरफ देखा। वह परमात्मा निकट से भी निकट है। क्योंकि तुम भी वही हो। श्वास भी वही ले रहा है तुम्हारे भीतर। मोहम्मद ने कहा है, कि श्वास की नली से भी वह पास है। एक बार तुम बिना श्वास के भी जी लो, उसके बिना तुम न जी सकोगे। उसके बिना कोई जीवन ही नहीं है। वह जीवन का सारभूत है।

तब जीवन की निंदा से कोई उस तक नहीं पहुंच पाएगा। और सभी धर्मों ने जीवन की निंदा की है। सिर्फ ज्ञानी पुरुषों ने जीवन की निंदा नहीं की है। उन्होंने तो जीवन का गौरव गाया है। असल में उसके जीवन के गौरव का जो गीत है, वही तो उसकी परमात्मा की स्तुति है।

इसलिए 'अन्नं ब्रह्म' है। स्वाद भी उसी का है। शरीर भी उसी का है, काम भी उसी का है। राम भी वही है। और जिस दिन तुम द्वंद्व खड़ा न करोगे, और तुम्हें दोनों में वही दिखाई पड़ने लगेगा, उसी दिन अद्वैत उपलब्ध होगा। अद्वैत सिद्धांत नहीं है, कि तुमने शंकराचार्य के ग्रंथ पढ़ लिए और तुम्हें अद्वैत की समझ आ गई।

अद्वैत तो जीवन को जीने की एक शैली है। इस भांति जीना है, कि दो के बीच विरोध खड़ा न हो। दो के बीच दोपन न आए। दो के बीच भी एक ही

दिखाई पड़ता रहे। इसलिए कबीर के बचन उलटबांसी मालूम पड़ते हैं। वह सीधी बांसुरी ही—

'अंबर बरसै धरती भीजै, यह जाने सब कोई।'

यह तो हमें पता ही है कि आकाश बरसता है, मेघ गिरते हैं अषाढ़ में धरती भीगती है, तृप्त होती है। लेकिन यह बात तो अन्धे को भी पता है, मूढ़ को भी पता है। इससे जानने से तुम कोई बहुत समझदार न हो जाओगे। जानने वाला तो यह कहता है—

'धरती बरसै, अम्बर भीजै बूझै बिरला कोई।'

धरती भी बरसती है। क्योंकि जीवन एक गहन एकात्म है। यहां तुम लेते ही लेते नहीं चले जा सकते। यहां लेने और देने में एक संतुलन है।

आकाश से तुमने मेघों को बरसते देखा लेकिन तुमने धरती के मेघ आकाश पर बरसते देखे हैं? ये हरे हो गए वृक्ष! इनसे धरति वापिस लौटा रही है जल को। ये मेघ हैं, जो आकाश में वापिस बरस रहे हैं। प्रतिपल पत्ते-पत्ते से भाप उठ रही है। अन्यथा आकाश मेघ कहां से लाएगा। बरसाने को? नदी-नदी से झरने झरने से भाप उठ रही है। सूरज की किरणों पर चढ़-चढ़ कर जगह-जगह से भाप इकट्ठी हो रही है आकाश में। धरती वापस लौट रही है।

इन फूलों की गंध में कौन वापिस जा रहा है? इन पक्षियों के कण्ठ से कौन आकाश पर बरस रहा है? सब तरफ से पृथ्वी लौट रही है। और जितना लौटाती है, उतना ही गहन होकर वापिस आता है। एक वर्तुलाकार प्रक्रिया है। आकाश धरती को देता है, धरती आकाश को देती है। धरती छोटी नहीं लेन-देन सदा बराबर है।

संतुलन ही तो जीवन का नियम है। अन्यथा संतुलन टूटता जाएगा। एक लेता जाए, एक देता जाए, दोनों ही दीन हो जाएंगे अंततः। एक कृपण होकर मरेगा, एक दरिद्र होकर मरेगा। जीवन लेन-देन है। जीवन प्रतिपल संतुलन को बनाए रखना है। जितना आकाश से धरती को मिलता है, उतना ही लौट जाता है।

और यह तो छोटा-सा प्रतिदान है, जो फूलों में, पहाड़ों में, नदी झरनों में, वृक्षों में दिखाई पड़ता है। पक्षियों के कंठों में, हवा के झोकों में जिसकी सरसराहट सुनाई पड़ती है।

लेकिन जब धरती का कोई बेटा, कोई बुद्ध, कोई कबीर खिलता है, हजार कमलों का कमल खिलता है जब उसके सहस्त्रार में, और जब उसकी पूरी प्राण-ऊर्जा आकाश की तरफ प्रवाहित होती है, तब महादान घटित होता है। तब आकाश पर मेघ घिर जाते हैं बुद्धों के। बुद्ध ने तो जो शब्द प्रयोग किया है उस परम अवस्था को, उसका नाम ही 'मेघ-समाधि' है। एक बादल की तरह आकाश पर बरस जाती है पृथ्वी।

कबीर कहते हैं, 'धरती बरसै अंबर भीजै।' कबीर कहते हैं, हमने उलटा भी देखा है। धरती को बरसते और अंबर को भीजते भी देखा है। स्रष्टा ने तो सृष्टि को बहुत कुछ दिया ही है। वह कोई बड़ी बात नहीं हैं। लेकिन हमने सृष्टि को भी स्रष्टा को लौटाते देखा है। परमात्मा ने तो सबको बनाया ही है, उसने तो सबको आपूर दिया ही है। लेकिन हमने एक और बात भी देखी है। कि हमने परमात्मा की तरफ सृष्टि से जाते हुए मेघ भी देखे हैं। और हमने पृथ्वी को ही नाचते नहीं देखा है मेघों में घिरे, हमने परमात्मा को भी नाचते देखा है।

जब बुद्ध का मेघ लौटाता है परमात्मा की तरफ, तब परमात्मा भी नाचता है। वह नटराज है। उसकी प्रसन्नता का क्या कहना उन क्षणों में!

इसलिए बुद्ध के जीवन में क्या है, कि जब बुद्ध ज्ञान की उपलब्ध हुए, तो असमय ही वृक्षों पर फूल खिल गए। इतनी महान घटना घटी ही, तो परमात्मा भी नाचता है। अगर प्रकृति नाची हो उस क्षण में तो कुछ अनूठा वही है। सूखे वृक्ष हरे हो गए, नई कोपले फूट गई। फूल आने को न थे; यह मौसम न था और फूल खिल गए आधी रात। अभी सूरज भी नहीं उगा था, जब बुद्ध उस परम अवस्था की तरफ धीरे-धीरे बह रहे थे। भोर का आखिरी तारा डूबा और बुद्ध परम मेघ-समाधि को उपलब्ध हुए। उस क्षण पृथ्वी ने जो दान दिया है, वह परमात्मा भी सदियों तक याद रखेगा—रखना ही पड़ेगा।

'और अगर गौर से देखो, तो सृष्टि का दान बड़ा मालूम होगा स्रष्टा के दान से। क्योंकि स्रष्टा ने तो एक साधारण बच्चा ही पैदा किया था। पृथ्वी ने बुद्धत्व देकर वापिस लौटाया।

"अंबर बरसै धरती भीजै यह जाने सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै बूझै बिरला कोई।"

परमात्मा का ऋण चुकाना है। तुमने पितृ-ऋण सुना है। तुमने गुरु-ऋण सुना है। लेकिन तुमने कभी सोचा, कि परमात्मा का भी ऋण है—जिसने तुम्हें बनाया है? जिसने सारी प्रकृति बनाई है, जो इस सारे खेल के पीछे छिपा हुआ स्रष्टा है, उसका ऋण भी चुकाना है। कोई बुद्ध उसका ऋण भी चुकाता है। कोई कबीर उसका ऋण चुकाता है।

उस घड़ी में, जब महिमा से भरी हुई चेतना वापिस लौटती है परमात्मा की तरफ—'धरती बरसै अंबर भीजै।' उस दिन आकाश भीग जाता है। आकाश का भीजना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। क्योंकि आकाश तो शून्य है। लेकिन कबीर कहते हैं, शून्य भी भीग जाता है, आर्द्र हो जाता है। शून्य भी उस क्षण में कठोर नहीं रह जाता, तटस्थ नहीं रह जाता। शून्य भी उस क्षण में कंप जाता है, आप्लावित हो जाता है।

धरती भीगती है, यह तो समझ में आता है। क्योंकि गहन धूप में, सूरज के ताप में धरती फट जाती है, प्यासी हो जाती है। इसलिए जब वर्षा होती है, तो पृथ्वी के रोएं-रोएं, प्राण-प्राण में एक तृप्ति समा जाती है। एक सोंधी गंध उठती है तृप्ति की, चारों तरफ फैल जाती है। यह समझ में आता है लेकिन आकाश तो महाशून्य है। आकाश तो सिर्फ अवकाश है, रिक्तता है। उसमें कैसी दरारें!

लेकिन कबीर ठीक ही कहते हैं। मैं भी सहमत हूं। आकाश में भी दरारें पड़ जाती हैं। बुद्धत्व की वहां भी प्रतीक्षा होती है। पृथ्वी खिले और बरसे आकाश पर। तभी तो यह खेल चल पाता है। यह खेल एक-तरफा नही है। यह द्वंद्व पृथ्वी और आकाश का, शरीर और आत्मा का, पदार्थ और परमात्मा का सृष्टि और स्रष्टा का। यह द्वंद्व दो के बीच विरोध नहीं है, यह दो के बीच एक गहन सामंजस्य है।

इसलिए तो हम इसे लीला कहते हैं। एक खेल है। शत्रुता नहीं है। अगर पृथ्वी और आकाश दूर भी जाते हैं तो करीब आने को! अगर पदार्थ और परमात्मा में भेद भी पड़ता है तो वह भेद केवल पास आने की प्रतीक्षा है। पास आने की तैयारी है।

तुमने अनुभव किया हो अगर तुमने कभी प्रेम किया है। इसलिए कहता हूं, कि अगर तुमने प्रेम किया है, क्योंकि बहुत कम लोग प्रेम को उपलब्ध हो पाते हैं। प्रार्थना तो बहुत दूर, जीवन प्रेम से भी वंचित रह जाता है। अगर तुमने कभी प्रेम किया है, तो तुम एक लय अनुभव करोगे प्रेमियों में। कि प्रेमी दूर होते हैं, करीब आते हैं—एक छंद है। क्योंकि अगर तुम सदा ही करीब-करीब रहो, तो भी रस खो जाता है। अगर तुम सदा ही दूर-दूर रहो, तो भी प्रेम टूट जाता है। एक लयबद्धता है। कि प्रेमी दूर हटते हैं, ताकि पास आ सके। पास आते हैं, फिर दूर हट जाने को।

अगर तुमने कभी प्रेम किया है तो तुमने पाया होगा कि प्रतिपल यह यात्रा चलती रहती है, दूर होने की, पास होने की। कभी झगड़ते हैं, दूरी बनाने को। कभी क्रोधित हो जाते हैं, ताकि मुख एक दूसरे से फिर जाएं। एक-दूसरे की तरफ पीठ हो जाए। लेकिन वह क्रोध उन्हें और भी पास ले आता है। जब क्रोध का तूफान जा चुका होता है, तो पीछे के सन्नाटे का क्या कहना! तब वहां प्रेम की मधुरिमा खिलती है। जब दो प्रेमी लड़ चुकते हैं, झगड़ चुकते हैं तब उस झगड़े के बाद प्रेम फिर से अभिनव हो जाता है। हर झगड़े के बाद नई सुहागरात है। और हर सुहागरात के बाद फिर नया झगड़ा है। प्रेमी झगड़ते हैं। झगड़े में राज है।

अगर प्रेमी झगड़ते न हों, तो समझना कि प्रेम समाप्त हो चुका है। अब दूर जाने की कोई जरूरत न रही क्योंकि पास आने की कोई आकांक्षा न रही। अब प्रेमी एक दूसरे को सहते हैं, झगड़ते नहीं। समझना, प्रेम चुक गया है। जो पति-पत्नी कभी नहीं झगड़ते, समझना, कि वहां प्रेम रहा ही नहीं।

हां, जो सतत् झगड़ते हैं, वहां भी प्रेम नहीं हैं। जो चौबीस घंटे झगड़े पर ही उतारू हैं, जिन्होंने उसे कोई युद्ध का मैदान बना लिया है, जो उसे धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे···! जो उसे समझ रहे है कि यही जीवन है, उनका भी प्रेम नहीं है। प्रेम कीमिया है, रसायन है। झगड़ते हैं, थोड़ा-सा फासला हो जाए। फासले में रस पैदा होता है।

गरमी के उत्तप्त दिनों में जब सूरज आग की तरह बरसता है, पृथ्वी तैयारी कर रही है वर्षा में तृप्त होने की। फिर वर्षा में डूब जाएगी आकंठ। नदियों में पूरे आएंगे। झरने बड़े होकर बहेंगे। बाढ़ फैलेगी। रोआं-रोआं सिक्त हो जाएगा जल से। पृथ्वी फिर तैयार हो रही है धूप के लिए। सूखना होगा, गीले होने के लिए। गीला होना होगा, सूखने के लिए।

जिसने जीवन के इस संगीत को समझा, उसके लिए पृथ्वी और परमात्मा

का द्वंद्व नहीं है। खेल है। उसे आत्मा और शरीर के बीच कोई संघर्ष नहीं है। सतत पास आना और सतत दूर जाने की छंद-बद्धता है। योग, परम-संगीत की कला है। वह कोई दुश्मनी नहीं है। इसलिए शरीर से लड़ना मत। पृथ्वी को त्याज्य मत समझना। पदार्थ को असार मत कहना। बाजार को व्यर्थ मत कहना। क्योंकि बाजार और हिमालय के बीच एक छंद चल रहा है। एक गहरा छंद है।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, कि उन संन्यासियों को कुछ भी उपलब्ध न होगा, जो सदा के लिए हिमालय भाग गए। उन गृहस्थों को भी कुछ उपलब्ध न होगा, जो बाजार में ही खो गए। वहां भी एक छंद चाहिए, कि कभी तुम बाजार में बैठे हो, दूर हो गए मंदिर से बहुत। और कभी तुम मंदिर में बैठे हो, पास हो गए मंदिर के बहुत। दूर हो गए बाजार से बहुत। अगर तुम इस छंद-बद्धता को संभाल लो, तो तुम मेरे संन्यास का अर्थ समझ पाओगे। अन्यथा मेरा संन्यास कबीर की उलटबांसी है।

मेरे पास लोग आते हैं, कि यह कैसा संन्यास है? पत्नी है, बच्चे है, लोग दुकान पर बैठे हैं, दफ्तर जा रहे हैं, ये कैसा संन्यास? क्योंकि संन्यास वे जानते हैं, जो सदा के लिए भाग गया, उसको वे संन्यासी कहते है। जो सदा के लिए बाजार में रह गया, उसको वे गृहस्थ कहते हैं। मेरा संन्यासी गार्हस्थ और पुराने संन्यास के बीच एक छंद है। कभी वह सब छोड़कर हट जाता है। ध्यान में लीन हो जाता है। कभी वह फिर बाजार में वापस लौट आता है। बाजार और मंदिर में विरोध नहीं है।

जैसे तुम्हारी श्वास जाती है बाहर। फिर भीतर आती हैं, फिर बाहर जाती है। तुम्हारे श्वास में विरोध नहीं है। तुमने कभी श्वास को संभाल लिया होता अगर शास्त्रों के अनुसार, तो तुम कभी के मर गए होते। श्वास को अगर भीतर ही रोक लोगे, तो भी मर जाओगे। श्वास को अगर बाहर ही रोक दोगे, तो भी मर जाओगे। श्वास को भीतर भी आने दो, बाहर भी जाने दो। श्वास कोई प्रतिबंध नहीं मानती। वह दोनों किनारों पर आती जाती है।

बाहर जाती श्वास संसार है। भीतर आती श्वास संन्यास है—पुरानी परिभाषा में। भीतर ही साध लो तो संन्यास, बाहर ही साध लो गृहस्थ। लेकिन मैं मानता हूं वे दोनों मर जाते है। पुराना गृहस्थी भी मर चुका है। सड़ रहा है

बाजारों में, दुकानों में। उसके जीवन में विपरीत को गंध न रही। वह मर रहा है क्योंकि उसके जीवन में केवल उत्ताप है, ग्रीष्म है। वह केवल पैसा जानता है। और पुराना संन्यासी भी सड़ गया है। उसे तुम मंदिर में आश्रमों में सड़ता हुआ पाओगे। अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी सुगंध लेने की क्षमता हो, तो तुम उसकी दुर्गंध को समझ पाओगे। वह सड़ रहा है। क्योंकि उसने भी सांस को रोक लिया है। उसने भी एक किनारे से अपने को बांध लिया है।

वास्तविक संन्यास दोनों के मध्य में है—निरति और सुरति। अतियों पर नहीं है, मध्य में है और होश में है। भागने में नहीं है। परिस्थिति को बदलने में नहीं है, अपने होश को बदलने में है। और बड़ा प्यारा संगीत है, जो हिमालय और बाजार के बीच सध जाए, मंदिर और दुकान के बीच सध जाए। बड़ा प्यारा संगीत है।

दूर होओ, ताकि पास आ सको। पास आओ, ताकि दूर जा सको। तभी तुम इस विराट की लीला के सजीव अंग हो सकोगे। तभी तुम इस वीणा के कंपते हुए तार हो सकोगे। अन्यथा तुम निर्जीव हो जाओगे।

'अंबर बरसे धरती भीजै यहु जाने सब कोई।'

इसलिए कबीर ने कभी बाजार नहीं छोड़ा। कबीर कपड़ा बुनते ही रहे। जुलाहे थे, जुलाहे बने ही रहे। शिष्यों ने बहुत समझाया, कि अब यह शोभा नहीं देता।

तो कहते हैं, कबीर ने कहा, जो परमात्मा को शोभा देता है, वह मुझे शोभा क्यों न देगा? वह बाजार को नहीं मिटा रहा। कभी का मिटा देना चाहता तो। संसार को नहीं मिटा रहा। रोज संसार को बनाए ही चला जाता है। रोज नये बच्चे निर्मित होते चले जाते हैं। नई दुकान खुलती है। नया बाजार बनता है। नया गांव बसता है। मुर्दों को हटाता है। जो सड़ गये उन्हें हटा लेता है। नयों को भेजता है। ताजों को भेजता है। जो फिर से वासना में पड़ेंगे। फिर से महत्वाकांक्षा जायेगी जिनको। जो फिर से धन इकट्ठा करेंगे। लोभ करेंगे, क्रोध करेंगे, प्रेम करेंगे। सारी लीला खड़ी होगी।

और उस लोभ, क्रोध काम की समझ से ध्यान की तरफ जायेंगे। जीवन की विषाद उन्हें समाधि के आनंद की तरफ ले जाएगा। फिर से संगीत सधेगा। पुरानों को हटा लेता है। समझदारों को हटा लेता है। परमात्मा समझदारों के

विरोध में मालूम पड़ता है। नासमझों को भेजता है। समझदारों को हटाता है। क्योंकि समझदार थोड़े ज्यादा समझदार हो जाते हैं। और जीवन का संगीत खोने लगता है। उनकी समझदारी जड़ता हो जाती है। वे किसी एक से चिपट जाते हैं। या तो गृहस्थ को पकड़ लेते है जोर से या संन्यस्त भाव को पकड़ लेते हैं जोर से। छोटे बच्चों की तरह सरल नहीं रह जाते।

छोटे बच्चों की सरलता का रहस्य तुमने जाना, क्या है? कभी तुमने छोटे बच्चे को देखा गौर से? अभी देखो, नाराज है। खिलौना टूट गया, चिल्ला रहा है। क्रोध से भर गया है, उत्तप्त है। तब तुम सोच भी नहीं सकते, कि यह बच्चा कभी शांत होगा। घड़ी भर बाद भूल गया खिलौना। शांत है कोने में बैठा। आंख बंद हो गई। झपकी लग गई। तुम सोच भी नहीं सकते, कि यह बच्चा कभी क्रोधित रहा होगा। इतनी सरलता से डोलता है क्रोध से अक्रोध में, अशांति से शांति में। अभी प्रेम कर रहा है, कह रहा है, तुम्हारे बिना न रह सकेगा एक क्षण। अभी नाराज हो गया। अब यह कहता है, तुम मर ही जाओ। तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। क्षण भर बाद क्रोध जा चुका। घृणा जा चुकी फिर तुम्हारे गले मिल रहा है।

छोटे बच्चे की सरलता क्या है? क्यों जीसस मोहित हैं छोटे बच्चों पर? क्यों वे कहते हैं मेरे परमात्मा के राज्य में वे ही प्रवेश कर सकेंगे, जो छोटे बच्चों की भांति है।

जो द्वंद्व के बीच सरलता से गतिमान हो जाए, वही सरल है। तुम्हारे संन्यासी भी जटिल हैं। तुम्हारे गृहस्थ भी जटिल हैं। अकड़ गये हैं। एक ने भीतर ही श्वास बांध रखी है। एक ने बाहर ही रोक रखी है। दोनों मर रहे हैं। श्वास को भीतर बाहर आने दो।

यह श्वास बड़ा गहरा प्रतीक है। जिस तरह श्वास भीतर-बाहर आती है, इसी तरह तुम्हारी चेतना भी बाहर भीतर आए। तब तुम्हारी चेतना भी जीवित होगी। इसलिये जो आंख बंद कर लेते हैं संसार की तरफ, और कठोर होकर हठयोग को साधकर, भीतर रहने की कोशिश करने लगते है, उनका जीवन भी दीन और दरिद्र हो जाता है। तुम उनके जीवन में गरिमा न पाओगे। तुम उनके जीवन में सृजन की क्षमता न पाओगे।

तुमने कभी सुना है, कि इन आंख बंद करने वाले अंतर्मुखी लोगों ने, इन्ट्रो-

वर्टस ने दुनिया को कोई सुन्दर गीत दिया हो? कि दुनिया को कोई सुन्दर चित्र दिया हो, कि कोई सुन्दर मूर्ति बनाई हो, कि किसी बीमारी को नया इलाज दिया हो इन्होंने दुनिया को कुछ दिया है? इनकी सृजनात्मकता क्या है? इनकी क्रियेटीविटी क्या है? ये तो मुर्दा हैं। ये हों न हो, बराबर है। ये भीतर बंद होकर बैठ गए हैं। इनका जीवन सड़ जायेगा। ये पोखरे की तरह हो गये। नदी न रही, जो बहती है। बंद हो गए। इनसे दुर्गंध उठेगी।

भारत की अधिकतम दुर्गंध, भारत के जड़ हो गए संन्यासियों के कारण है। और उनकी संख्या बड़ी है, लाखों में है। वे लाखों लोग इस मुल्क की छाती पर बैठे हैं जड़ होकर। और उनका प्रभाव भारी है क्योंकि वे पूज्य है। सदियों से तुमने उन्हें पूजा है। उनके पैर छुए हैं। तुम उनको अब भी पूजे चले जा रहे हो। लाश की पूजा चल रही है। वे तुम्हें भी लाश में रूपांतरित कर देंगे।

पश्चिम का दुर्भाग्य कि वहां लोग बाहर ही बाहर जी रहे हैं। तो उनके जीवन में धन-धान्य बहुत है, लेकिन भीतर की शांति नहीं है। वे गीत तो बहुत निर्मित कर लेते हैं, लेकिन गीत में भीतर का स्वर नहीं आता। वे मूर्तियां बहुत निर्मित कर लेते हैं, लेकिन उनकी मूर्तियां ऐसी लगती हैं जैसे पागलों ने बनाई हो।

पिकासो के चित्र को देखा तो ऐसा लगता है, कोई विक्षिप्त आदमी चित्र बना रहा है। कितने ही कलात्मक हो तो, भी सुन्दर नहीं हैं। कितना ही श्रम उनमें लगाया गया हो, तो भी उनसे भीतर से कुछ अहोभाव नहीं उठता। कोई आशीर्वाद नहीं रसता। वे ऐसे हैं, जैसे जीवन की दुखांत कहानी कहते हैं। विषाद-भरी! विक्षिप्तता से भरी! पागल आदमी का चित्र प्रकट करते हैं। किसी बुद्धत्व की मूर्ति उनसे प्रकट नहीं होती।

पश्चिम में सृजन बहुत है। चीज बढ़ती जाती हैं। मकान सुन्दर होते जाते हैं। रास्ते अच्छे होते जाते हैं। कपड़े बेहतर होते जाते हैं। मशीन बनती जाती हैं। लेकिन भीतर बड़ा कोलाहल है। भीतर की कोई शांति नहीं है। पूरब में भीतर ये दोनों ही अधूरी बातें हैं। और दोनों परमात्मा का विरोध है। परमात्मा चाहता है, तुम श्वास भी लो, तुम श्वास छोड़ो भी। तुम आकाश को भी चाहो और तुम पृथ्वी को भी चाहो। और तुम्हारी दोनों चाहों में कोई विरोध न हो। तुम्हारी दोनों चाहें किसी महाचाह का अंग हो जाएं। एक विराट संगीत के दो

स्वर हो जाएं। अन्यथा तुम इकंगे हो जाओगे और संतुलन खो जाएगा।

'अंबर बरसे धरती भीजै, यह जाने सब कोई।
धरती बरसे अंबर भीजै बूझै बिरला कोई॥
गावनहारा कदै न गावे, अनबोल्या नित गावे।
नटवर पेखि पेंख ना पेखे, अनहत बेन बजावे।

गावन हारा कदे न गावे—वह जो असली गीत गाने वाला है वह कभी गाता नहीं।

जटिल है बात। इसलिए तो लोग कहते हैं, कबीर की बातें उलटबासी हैं। जो असली गाने वाला है, वह कभी गाता नहीं। उससे गीत पैदा होता है, वह गाता नहीं। और जब तक तुम गाते हो, तब तक गीत ऊपर-ऊपर होगा। तुम्हारी आत्मा से पैदा न होगा। चीन में एक बड़ी पुरानी उक्ति है, कि जब संगीतज्ञ परिपूर्ण हो जाता है, तो वीणा को तोड़ देता है। क्योंकि वीणा भी सिक्खड़ की खबर देती है। और जब धनुर्धारी परिपूर्ण हो जाता है, धनुष को छोड़ देता है।

एक बड़ी पुरानी ताओ कथा है कि एक आदमी बहुत बड़ा धनुर्विद हो गया। सम्राट ने घोषणा की राज्य में, कि इससे बड़ा कोई धनुर्विद नहीं है। अगर कोई प्रतियोगी सोचता हो कि इससे बड़ा धनुर्विद है तो आकर प्रतियोगिता कर ले। अन्यथा यह आदमी राज्य का सर्वोत्तम धनुर्विद् घोषित कर दिया जाएगा। तीन महीने का समय दिया।

दूसरे ही दिन एक बूढ़ा आदमी आया। और उस धनुर्विद् से बोला, 'इस पागलपन में मत पड़ो। क्योंकि मैं एक ऐसे आदमी को जानता हूं, जो तुमसे बड़ा धनुर्विद् है।' तो उस धनुर्विद् ने कहा, 'तो वह आ जाए और प्रतियोगिता कर ले।'

तो वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा, 'जो जितना बड़ा हो जाता है, उतना प्रतियोगिता के पार ही जाता है। वह तो बच्चों का नाम है—प्रतियोगिता, काम्पीटीशन। वह नहीं आएगा। अगर तुम्हें सीखना है, तो मैं तुम्हें ले चल सकता हूं।'

धनुर्विद हैरान हुआ। क्योंकि उसने सोचा भी न था, कि यह बात भी हो सकती है कि बड़ा धनुर्विद हो, लेकिन बड़े होने के कारण प्रतियोगिता में न उतरे, छोटे उतरते है प्रतियोगिता में—स्वभावतः। क्योंकि छोटे ही बड़ा होना सिद्ध

करना चाहते हैं। इसलिए प्रतियोगिता में उतरते हैं। ताकि सिद्ध हो सके, हम बड़े हैं। जो बड़ा है, वह बड़ा है। बिना किसी प्रमाण के बड़ा है। उसे कोई प्रतियोगिता और किसी सम्राट का सर्टिफिकेट नहीं चाहिए।

मनस्विद् कहते हैं, सिर्फ हीन ग्रंथि से पीड़ित लोग प्रतियोगिता में उतरते हैं, जिनके मन में इनफिरियारिटी काम्पलेक्स है, जो डरे है। जो भीतर तो जानते हैं कि हम योग्य नहीं हैं। लेकिन किसी तरह सिद्ध करना है, तो कैसे सिद्ध करे? जिसकी गरिमा स्वयं सिद्ध हैं, स्वतः प्रमाण है, वह प्रतियोगिता में तो उतरता नहीं।

बात तो जंची। धनुर्विद् ने कहा, मैं आता हूं। वह पीछे उस बूढ़े के गया। वह धनुर्विद् को ले गया पास के जंगल में। और वहां एक व्यक्ति था। वह लकड़ी काट रहा था। धनुर्विद् ने पूछा, यह आदमी धनुर्विद् है? कहा, यही आदमी धनुर्विद् है। इसका धनुष कहां हैं? तो उस बूढ़े आदमी ने कहा, कि जो वास्तविक धनुर्विद् है, वह धनुष को चोबीस घंटे टांगे हुए नहीं घूमता। पर धनुर्विद् ने कहा अगर ऐसा मौका आ जाए और संघर्ष हो जाए? उसने कहा, धनुर्विद है। वह तो हाथ से भी तीर चला सकता है। तीर की भी जरूरत नहीं।

तो उस धनुर्विद् ने दूर से खड़े होकर एक आड़ से और तीर मारा। वह जो लकड़ी काटने वाला लकड़हारा था, उसने लकड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा लेकर तीर पर चोट की, जो तीर आ रहा था। तीर वापस लौट गया। जा कर धनुर्विद् की छाती में चूभ गया।

धनुर्विद् आया, पैर पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे क्षमा करें। मैं तो सोचता था, धनुष के बिना कहीं धनुर्विद्या आई है? मगर तुम तो अनूठे हो। यह कला मैं कैसे सीख सकूंगा? उसने कहा, मेरे पास रहो, सीख जाओगे।

तीन वर्ष लगे। वह यह कला सीख गया। लौटने लगा सम्राट के महल, तो उस धनुर्विद् ने कहा, 'लेकिन रुको। मैं कुछ भी नहीं हूं। मेरा गुरु अभी जीवित है। मैं तो ऐसे ही लकड़हारा हू। ऐसा थोड़ा उच्छिष्ट गुरु से पा लिया, वही हूं। क्योंकि जो वास्तविक धनुर्विद् है वह लकड़ी भी क्यों फेंकेगा? उसकी आंख का इशारा काफी है। आंख का इशारा भी क्यों? उसके मन की धारणा काफी है। अभी जाओ मत।'

यह यात्रा तो लंबी मालूम पड़ी। तीन साल तो इस आदमी के साथ बीत गए।

सोचा था कि अब पारंगत हो गया। अब कोई उपद्रव न रहा। इसका गुरु भी है। लेकिन अब लौटने का भी कोई उपाय न था। रस उसे भी लग गया था।

चला इस लकड़हारे के साथ पहाड़ की बड़ी ऊंची चोटियों पर। एक अत्यंत बूढ़े आदमी को देखा, जिसकी कमर झुकी हुई थी। जो कम से कम सौ के पार कर चुका था उम्र। उस लकड़हारे ने कहा, यही मेरे गुरु हैं। उसे थोड़ी हंसी आने लगी। इसकी तो कमर झुकी है, यह तो निशाना भी नहीं लगा सकता। लेकिन अब हिंमत खो चुकी थी पुराने अहंकार की। उसने कहा, पता नहीं...! उस बूढ़े से कहा, कि हमें भी सीखना है। तुम्हारे चरणों में आए हैं। उसने कहा, पहले परीक्षा से गुजरना पड़ेगा। आओ मेरे पीछे।

वह पहाड़ की कगार पर गया। एक भयंकर चट्टान, जो खड्ड के ऊपर दूर तक चली गई थी। और जिसके नीचे हजारों फीट गहरा खड्डा था; जिस पर जरा से चूक गए, कि मृत्यु सुनिश्चित थी। पहले बूढ़ा जा कर उस चट्टान की कगार पर खड़ा हो गया। आधा पैर खड्डे में झांकता हुआ, कमर झुकी हुई सिर्फ ऐड़ी के बल खड़ा। उसने कहा, आओ मेरे पास।

उसके हाथ पैर कंपने लगे। वह उससे दूर ही, उससे चार फीट दूर ही गिर पड़ा घबड़ा कर। जो उसने खड्ड के नीचे देखा, ज्वरग्रस्त हो गया शरीर।

उस बूढ़े ने कहा, तुम कैसे धनुर्विद् हो सकोगे ? जिसके मन में भय है, उसका तीर निशाने पर कैसे लगेगा ? भय तो कांपता ही रहता है। उसका हाथ कंपता रहेगा। अंधों को न दिखाई पड़े, लेकिन जिसके पास आंख हैं, वह तो देख ही लेता है कि तेरा हाथ कंप रहा है। जहां भय है। वहां कंपन है। अभय ही निष्कंप होता है। तू तो यहां इतना कंप रहा है कि गड्ढे के पास नहीं आ सकता। तू तो निशाना क्या लगाएगा ? भाग जा यहां से।'

उस धनुर्विद् ने कहा जाते समय, मैं घबड़ा गया हूं। मेरी हिंमत नहीं है इस शिक्षा में आगे उतरने की। मैं पहली परीक्षा मे ही असफल हो गया। मैं यह ख्याल ही छोड़ देता हूं अब धनुर्विद् होने का। आप ठीक कहते है, मेरे भीतर कंपन है, घबड़ाहट है, डर है।

और निश्चित हो जब भीतर भय हो, तो हाथ भी कंपेगा। दिखाई पड़े। और हाथ कंपेगा, तो चाहे दुनिया को दिखाई पड़े कि निशाना लग गया है, लेकिन उस बूढ़े धनुर्विद् ने कहा, हम तो जानते है, निशाना चूक गया। निशाना लगने से थोड़े

ही लगता है। निशाना वहां थोड़े ही है। निशाना तो भीतर है। अकंप हृदय चाहिए। बस फिर सब हो जाता है।

ऊपर पक्षियों की एक कतार उड़ रही थी। उस बूढ़े आदमी ने ऐसे हाथ का इशारा किया और हाथ को नीचे गिराया। पच्चीस पक्षी नीचे गिर गए। सिर्फ इशारे से !

भाव काफी है। अगर अकंप हृदय हो तो जो भाव हो, वह तत्क्षण यथार्थ हो जाता है। अगर अकंप हृदय हो तो विचार वस्तुएं हो जाते हैं। शब्द घटनाएं हो जाते हैं।

इसलिए तो ऋषियों के आशीर्वाद का इतना मूल्य है। लोग उनके पास सिद्धांत समझने थोड़े ही जाते थे; उनकी अनुकंपा लेने। वे आशीर्वाद दे दें। बस, उतना ही काफी है इसलिए तो ऋषि से अगर अभिशाप निकल जाए, तो उससे बचना मुश्किल है। इसलिए तो सारी हिन्दू कथाएं हैं कि ऋषि ने अगर अभिषाप दे दिया तो जन्मों-जन्मों तक पीछा करेगा। हालांकि ऋषि अभिषाप देते नहीं। जो दे देते, हैं उनके ऋषि होने में थोड़ा सन्देह है। दुर्वासा को ऋषि कहना उचित नहीं है।

अभिषाप ऋषि से निकल कैसे सकता है ? वे तो कथाए है। वे तो कथाएं सिर्फ इस बात की सूचक हैं, कि यदि ऋषि दुर्वासा जैसा हो और अभिशाप दे दे, तो जन्मों-जन्मों तक उससे छुटकारा नहीं। क्योंकि उसके शब्द सत्य हो कर रहेंगे। ऋषि तो आशीर्वाद ही देता है।

इसलिए दुर्वासा कभी हुए नहीं। वह तो समझाने के लिए है। वह तो समझाने के लिये है कि विपरीत भी सच है। होता नहीं, लेकिन अगर हो, तो जन्मों-जन्मों तक उससे छुटकारा नहीं हैं। ऋषि तो वही हैं, जिसका प्राण प्रतिपाल आशीर्वाद दिए जाता है। वस्तुत: ऋषि से आशीर्वाद मांगना भी नहीं पड़ता। तुम सिर्फ अपने भिक्षापात्र को लेकर मौजूद हो जाओ, हृदय को लेकर मौजूद हो जाओ, इसके आशीर्वाद गिर ही रहे हैं। वह जो सोचता है, वह होकर रहेगा।

इसलिए जो लोग ध्यान में उतरते है, उनके लिए बुद्ध ने एक नियम बनाया है ध्यान के पूर्व उन्हें अपने विचारों पर परिपूर्ण नियंत्रण कर लेना चाहिए। क्योंकि कभी-कभी ऐसा हो सकता है, कि तुम्हें थोड़े से ध्यान की क्षमता हो जाए और कभी क्षण भर को तुम मौन होने लगो, और विचारों पर पूरा नियंत्रण न हो और

कोई गलत विचार उस समय तुम्हारे मन के आकाश से गुजर जाए, तो वह पूरा हो जाए।

और गलत विचार तुम्हारे मन में चौबीस घंटे गुजर रहे हैं। जरा किसी ने गाली दे दी और तुम कहते हो, मर जाओ। अभी कहते हो, कोई हर्जा नहीं। क्योंकि कोई मरता नहीं तुम्हारे कहने से क्या होता है? लेकिन अगर ध्यान का क्षण हो, मन थोड़ा शांत हो, और यह विचार की तरंग दौड़ जाए, वह आदमी मर जाएगा तत्क्षण मर जाएगा।

इसलिए समस्त ध्यानियों ने, पतंजलि ने बुद्ध ने, समस्त ज्ञानियों ने ध्यान के पहले शील को रखा है। उसका कारण यह नहीं है, कि चरित्रहीन ध्यान को नहीं पा सकता है। लेकिन चरित्रहीन का ध्यान खतरनाक हो जाएगा। इसलिए शील प्राथमिक है।

इसलिए पतंजलि के आठ नियम हैं। बुद्ध का अष्टंग मार्ग है। महावीर के पंच महाव्रत हैं। उनका ध्यान से कोई सीधा संबंध नहीं है। ध्यान उनके बिना हो सकता है। लेकिन तब ध्यान से अभिशाप पैदा हो सकता हैं। तब दुर्वासा पैदा हो सकता है। अगर दुर्वासा कभी भी हुआ हो, तो शील के नियम छोड़ कर उसने ध्यान किया होगा। तब दुर्घटना घट सकती है।

कबीर कहते हैं, 'गावनहारा कदै न गावै...'

जो असली गायक है, वह गाता थोड़े ही है। उससे गीत पैदा होता है। असली गायक स्वयं ही गीत है। वह गाता नहीं। क्योंकि गाना तो कृत्य है। असली गायक की तो आत्मा ही गीत है। उसका होना गीतपूर्ण है। तुम उसके पास जाकर संगीत सुनोगे। वह चुप बैठा हो, तो भी उसके चारो तरफ मधुर संगीत गूंजता हुआ तुम पाओगे। एक गुनगुनाहट हवा में होगी। एक गीत उसके होने से पैदा होता रहेगा। एक सन्नाटा—लेकिन संगीतपूर्ण। तुम्हें छुएगा, स्पर्श करेगा, तुम्हें भर देगा।

'गावनहारा कदै न गावै...'

इसलिए तो परमात्मा का गीत तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता। क्योंकि वह गा नहीं रहा, वह स्वयं गीत है। जब तक तुम परिपूर्ण शून्य न हो पाओगे—'अवधू, शून्य गगन घर कीजै। जैसे ही तुम शून्य-घर में प्रविष्ट हो जाओगे, वैसे ही वह गीत सुनाई पड़ने लगेगा, जो परमात्मा है।

'गावनहारा कदै न गावै, अनबोल्या नित गावै।'

बोलता नहीं, फिर भी नित उसका गीत चलता रहता है।

'नटवर पेखि पेख ना पेखै, अनहत बैन बजावै।'

और जिसने उसको देख लिया, नाचने वाले को, उस गाने वाले को, उस नटवर को, उन नटराज को, उसने सब देख लिया, क्योंकि उसका नृत्य ही तो सारा दृश्य जगत है। ये जो तुम्हें फूल-पत्ते, आकाश, वृक्ष, बादल दिखाई पड़ रहे हैं, सब उसके नृत्य की भाव-भंगिमाएं हैं। पूरा अस्तित्व नाच रहा है। इसलिए हिन्दुओं ने परमात्मा की जो गहनतम प्रतिमा गढ़ी है, वह नटराज है। और सारी प्रतिमाएं फीकी हैं। नटराज बेजोड़ है। नाचने वालों का राजा! वह दिखाई नहीं पड़ता।

तिब्बत में एक कथा है, कि एक व्यक्ति नाचते-नाचते ऐसी दशा में पहुंच गया कि जब वह नाचता था, तो नाच ही रह जाता था और नाचने वाला खो जाता था। सभी नर्तक उसी दशा में पहुंच जाते हैं। तब उनके जीवन में अनूठी घटनायें घटती हैं। वह नर्तक इस अवस्था में पहुंच गया वर्षों के नृत्य के बाद। कि जब वह नाचता था, तो शुरू में तो लोगों को दिखाई पड़ता था, थोड़ी देर में धुंधला हो जाता। और थोड़ी देर में धुयें की रेखा रह जाती और थोड़ी देर में नाचने वाला खो जाता। कुछ दिखाई न पड़ता। लेकिन जो शांत हो सकते थे, वे उसके नृत्य को पूरे शरीर पर स्पर्श होते अनुभव करते। क्योंकि उसके नृत्य से सारी हवा तरंगयित होती।

नटराज का अर्थ है, ऐसा नर्तक, जिसके भीतर नर्तक और नृत्य में भेद नहीं है। जो स्वयं अपना नृत्य है। जो नर्तक भी है और नृत्य भी है। यह सारा अस्तित्व उसका नर्तक है। और इस नर्तक को तुम समझ लो, तो नर्तक मिल जाए। नर्तक मिल जाए, तो तुम नर्तक को समझ लो। प्रकृति को तुम ठीक से पहचान लो, तो परमात्मा की प्रतिमा ऊभर आए। या परमात्मा से तुम्हारा मिलन हो जाए, तो प्रकृति तुम्हें उसकी भाव-भंगिमा मालूम होने लगे।

आकाश पर घिरते बादल उसके चेहरे पर ही घिरते हैं। झीलों में चमकती शांति उसकी आंखों में ही चमकी है, उसकी आंखों की ही गहराई है। सब वही है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, सबका सार भूत! इसलिए तुम उसे खोजने जाओ, तो कहीं मिलेगा नहीं। तुम इस भ्रांति में मत रहना कि कहीं किसी दिन

पहुंच जाओगे, परमात्मा आमने-सामने खड़ा है और तुम जैरामजी कर रहे हो। कभी तुम्हें परमात्मा आमने-सामने न मिलेगा। वह सब है।

'गावनहारा कदै न गावे, अनबोल्या नित गावै।
नटवर पेखि पेखना पेखै...'

और जिसने उसे देख लिया, उसने सारे नृत्य के विस्तार को देख लिया। उसने सारा दृश्य समझ लिया, जिसने द्रष्टा को समझ लिया।

'अनहद बैन बजागै –' उसकी वीणा तो अनहद बज रही है। तुम्हीं को अपने कान सम्हालने हैं। उसकी वीणा तो कभी रुकती नहीं। तुम्हें ही अपने को सम्हाल लेना है ताकि तुम वीणा को सुन सको।

'कहणी रहणी निज तत जानै, यह सब अकथ कहानी।
धरती उलटि आकाशहि ग्रासै, यह पुरिसा की बाणी।'
कहणी रहणी निज तत जानै—

तीन तरह के लोग हैं। एक, जिनको हम असाधु कहते हैं। उनकी कहानी और रहनी विपरीत होती है। कहता कुछ है, करता कुछ है। कहता कुछ है, होता कुछ है। बोलता कुछ। कहता पश्चिम जाता, जाता पूरब। उसके करने में और उसके होने में एक भयंकर अंतराल है। एक विपरीतता है। वह बंटा हुआ है, खंड-खंड में। यही द्वैत का अर्थ है। असाधु सोचता कुछ, बोलता कुछ, कहता कुछ है। तुम उस पर भरोसा नहीं कर सकते।

दूसरा व्यक्ति है, जिसे हम साधु कहते हैं। वह जैसा बोलता है, वैसे ही रहने की चेष्टा करता है। कहनी और रहनी में एक तारतम्य बिठाता है। जैसा सोचता है, वैसा ही जीने का उपाय करता है। लेकिन कोई उपाय कभी पूरा नहीं हो पाता। असाधु से बेहतर कम से कम उपाय करता है। लेकिन कहनी और रहनी एक हो नहीं पाती। बड़े से बड़े साधु की भी करनी एक नहीं हो पाती। इसलिए तो साधु को तुम दुखी देखते हो।

असाधु को तुम दुखी देखते हो, क्योंकि उसके जीवन में इतना विरोध है कि उस विरोध के कारण सुख पैदा नहीं हो सकता। तुम उसे कारागृह में देखते हो। अपराध से भरा हुआ देखते हो। अपराध से घिरा हुआ देखते हो। हजार तरह का समाज उसे दंड देता है और हजार तरह के दंड वह खुद अपने को देता है। उसका जीवन एक व्यथा है, पीड़ा है, छूटना भी चाहता है उससे, तो छूट नहीं

सकता। उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। वह खुद अपने पर भरोसा नहीं कर सकता। उसका धोखा गहरा है, इसलिये वह दुखी है।

साधु भी सुखी नहीं दिखाई पड़ता है। यह बड़ी चमत्कार की बात है। असाधु दुखी है, समझ में आता है। साधु क्यों सुखी नहीं है? मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं, जो साठ-साठ वर्ष से साधु रहे हैं। उनकी उम्र अस्सी हो गई। जवान थे, बीस वर्ष के थे, तब सब छोड़ दिया था। अब भी दुःख वहीं का वहीं है। बल्कि और घना हो गया, क्योंकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है, वैसे-वैसे विफलता दिखाई पड़ती है। सब असार हो गया। उनके भीतर की गहन पीड़ा है। भले लोग! इनका क्या दुख है।

इनका दुख है कि ये लाख उपाय करते हैं कहनी और रहनी को बिठाने के; वह बैठ नहीं पाती। उनमें भेद बना ही रहता है। अहिंसा सोचते है, हिंसा पूरी तरह खो नहीं पाती। करुणा सोचते है, चेष्टा भी करते हैं, चेहरा भी करुणा का बनाते हैं, आचरण भी सम्हालते है, लेकिन क्रोध जाता नहीं। ब्रह्मचर्य साधने की सोचते हैं, निष्ठापूर्वक, आग्रहपूर्वक आयोजन करते हैं, लेकिन काम-वासना जाती नहीं। बल्कि कई बार बढ़ती मालूम पड़ती है।

कहनी और रहनी में चेष्टापूर्वक जो भी सामंजस्य बिठाएगा, वह भी दुखी रहेगा। चेष्टापूर्वक सामंजस्य बैठ ही नहीं सकता।

फिर तिसरा व्यक्ति है, जिसको हम संत कहते हैं, जिसको हम परम साधु कहते हैं, ऋषि कहते हैं—कोई भी नाम दें। इस तीसरे व्यक्ति की रहनी और कहनी में एकता होती है। लेकिन यह एकता बाहर से बिठाई नहीं होती। वह निजसत्व को जान लेता है, इसलिए होती है। वह स्वयं को पहचान लेता है, इसलिए उसके बायें और दायें हाथ के भीतर एक एकता आ जाती है। क्योंकि दोनों उसके ही हाथ हैं।

इस भेद को ठीक से समझ लेना। वह स्वयं को जानता है, पहचान लेता है। उस पहचान के साथ ही उसका कहना, उसका सोचना, उसका आचरण, सब एक हो जाता है। क्योंकि सबके पीछे वह एक को खोज लेता है। यह जो एक की खोज है, यह विरोध में सामंजस्य बिठाने से कभी नहीं आती। यह सीधा एक को खोजने से ही फलित होती है।

'कहणी रहणी निज तत जाने।' जिसने निज तत्व को जान लिया, उसकी

कहनी और रहनी एक हो जाती है।

'...यह सब अकथ कहानी।'

यह कहनी, जिसे कहना बहुत मुश्किल। क्यों कहना मुश्किल है? संतों ने सदा कही है। फिर भी तुम सुन नहीं पाये, इसलिए कहनी मुश्किल है। इसलिए अकथ कहानी।

संत सदा से कहते रहे हैं कि तुम स्वयं को जान लो तो तुम्हारे आचरण और विचारों में एकता आ जाएगी। आत्मा को पहचान लो, तो एकता आ जाएगी। तुम एकता करने की कोशिश करते हो और सोचते हो, एकता आने से शायद आत्म हत्या को जानना हो जाएगा। तुम गाडी के पीछे बैल जोतते हो।

और तुम्हारा भी कारण है कि ऐसा तुम क्यों करते हो। वह कारण समझ लेना चाहिये। तुम्हारी भ्रांति के पीछे जरूर कोई बुनियादी आधार है वह आधार यह है कि संतों को जब भी तुमने देखा है, तो उनकी आत्मा तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती, उनका आचरण दिखाई पड़ता है। आचरण दिखाई पड़ता है, आत्मा तो दिखाई नहीं पड़ती। इसलिए जो दिखाई पड़ता है वह तुम्हें बहुत मूल्यवान मालूम पड़ता है। और जो नहीं दिखाई पड़ता, उसको तो तुम मूल्यवान कैसे समझोगे?

इसको समझो। महावीर को आत्मज्ञान हुआ। आचरण में अहिंसा आ गई। उनका आत्मज्ञान तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे तुम कैसे देखोगे? तो तुमने आचरण में आई अहिंसा को देखा। वह तुम्हें दिखाई पड़ी। वह महत्वपूर्ण हो गई। तुमने समझा, कि महावीर अहिंसक हो गए हैं। शायद इसीलिए आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। बात बिलकुल उलटी थी। महावीर आत्मज्ञान को उपलब्ध हुये थे, इसलिए अहिंसा को उपलब्ध हुए थे। तुमने जाना, अहिंसा को उपलब्ध हुये इसलिये आत्मज्ञान मिला है। आत्मज्ञान तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।

स्वभावतः दृश्य को तुम आधार बनाते हो, अदृश्य को उसका परिणाम। तुम्हारी आँख जो दिखाई पड़ता है उसको पकड़ती है। जो नहीं दिखाई पड़ता, उसका कैसे पकड़ेगी? तो तुम सोचते हो, मैं भी अहिंसा को उपलब्ध हो जाऊं, तो मुझे भी आत्मज्ञान उपलब्ध होगा। बस, गणित गलत हो गया। यात्रा गलत शुरू हो गई।

अब तुम, लाख उपाय करोगे अहिंसक होने के, थोड़े बहुत होते मालूम भी पड़ोगे, लेकिन जितनी ही चेष्टा करोगे, उतना ही तुम पाओगे कि असंभव है यह होना। हो नहीं पाता। बिठा पाते हो साज, बिखर जाता है। किसी तरह सम्हाल पाते हो, जरा सी घटना मिटा देती है। वर्षों सम्हालते हो, क्षण भर में टूट जाता है। ताश के पत्तों का घर मालूम होता है। जरा सा हवा का झोंका आया कि गया। अहंकार को मिटाने की कोशिश करते हो, मिटता नहीं। क्रोध को हटाने की कोशिश करते हो, हटता नहीं।

कबीर कहते हैं, 'यह सब अकथ कहानी।' इसे कहना मुश्किल। क्योंकि कहने से ही यह गलत समझी जाती है। उलटी समझ लेते है लोग। हम कुछ कहते हैं, लोग कुछ समझ लेते हैं। इसलिए अकथ कहानी। इसलिए नहीं, कि यह कही नहीं जा सकती। इसलिए कि कितना ही कहो, समझी नहीं जाती।

'धरती उलटि आकाशहि ग्रासे यह पुरिसा की वाणी।'

और यही परम-पुरुषों की वाणी है; आप्त-पुरुषों की। 'धरती उलटि आकाशहि ग्रासे'—कि तुम जिस जीवन को अब तक समझते रहे हो, उससे ठीक उलटा नियम है। जैसे धरती उलट कर आकाश को ग्रस जाए, या जैसे बूंद में सागर गिर जाए। तुम जो समझते हो उससे उलटा नियम है। तुम्हारी समझ का नियम काम नहीं आएगा। तुम्हारी समझ के नियम के अनुसार तुम चलते रहे हो। वही तुम्हें भटकाये है।

इससे ठीक उलटा नियय है। उलटा नियम क्या है? कि तुम स्वयं को जान लो, सब सध जाएगा। और तुम सब साधते रहो, तुम स्वयं को न जान पाओगे। उपनिषदों ने कहा है, एक को साधने से सब सध जाता है। महावीर ने भी कहा है, एक को जानने से सब जान लिया जाता है। 'इक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।' तुम बहुत साध रहे हो। बहुत को साधने की जरूरत नहीं है।

समझो, क्रोध को आदमी साधता है, तो क्रोध को अगर किसी तरह दबा ले, तो उसमें कामवासना बढ़ जाएगी। क्योंकि जितनी ऊर्जा क्रोध में जाती थी, उतनी ऊर्जा अब दूसरी तरफ से बहने लगेगी। एक आदमी कामवासना को साधता है। वह किसी तरह ब्रह्मचर्य को बिठा लेता है जबरदस्ती। कामवासना तो कम हो जाती है, लेकिन जो ऊर्जा कामवासना से निकलती तो, वह क्रोध

निकलने लगती है। इसलिए ब्रह्मचारियों को तुम सदा ही क्रोधी पाओगे। भयंकर क्रोधी। उनके आंख पर ही क्रोध रखा है। यह अकारण नहीं है, वैज्ञानिक है। अगर तुम लोभ को दवाओगे, तो कुछ और बढ़ जाएगा।

लेकिन तुम्हारे जीवन की दशा वही रहेगी। चुकता हिसाब उतना ही रहेगा। उसमें फर्क न पड़ेगा। 'एक साधे सब साधे।' अगर बीमारी को साधने गए, तो कितनी बीमारियां हैं। अनंत बीमारियां हैं। साधते-साधते जनम-जनम बीत जाएगे। तुम कभी न साध पाओगे एक तरफ साधोगे, पाओगे, पुरानी तरफ से फिर यात्रा ऊर्जा की शुरू हो गई। तुम पगला जाओगे। तुम विक्षिप्त हो जाओगे। तुम थक जाओगे। तुम हार जाओगे। तुम्हारा आत्मविश्वास खो जाएगा। नहीं, बहुत को साधने में मत पड़ना। कुंजी एक है। उससे सब ताले खुल जाते हैं।

'कहणी रहणी नित तत जाने—'

वही सूत्र है; स्वयं को जान लेना। इसलिए ध्यान पर इतना जोर हैं।

लोग मेरे पास आते हैं। कहते हैं 'क्रोधी हैं, क्या करें?' उनसे मैं कहता हूं, तुम अलग से मत सोचो। तुम ध्यान करो।' उनकी समझ में नहीं आता। वे कहते हैं, 'क्या ध्यान से क्रोध चला जाएगा?'

ध्यान से समझ आएगी; क्रोध नहीं आएगा। लेकिन समझ जाए, तो क्रोध पैदा नहीं होता। ध्यान से बोध बढ़ेगा, क्रोध नहीं जाएगा। लेकिन क्रोध तो उन्हीं को आता है, जो अबोध में हैं। कामी आता है, कहता है, कि बस! पागल आ जा रहा हूं। उससे भी मैं कहता हूं, तुम ध्यान करो। वह कहता है क्या ध्यान से काम-वासना चली जाएगी? इसका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता।

नहीं, ध्यान से काम-वासना कैसे जाएगी? लेकिन ध्यान से भीतर तुम सुखी होने लगोगे। जो भीतर सुखी है, वह दूसरे से सुख की मांग नहीं करता। जो स्वयं सुखी है, वह किसी के द्वार पर सुख मांगने नहीं जाता। काम भिक्षा है दूसरे से सुख मांगने की। जो भीतर आनंदित है, वह संभोग में आनंद नहीं पाता। जिसको बड़ा आनन्द मिल गया, वह छोटे आनन्द की क्यों मांग करेगा? जहां रुपये बरस रहे हों, वहां वह क्यों कौड़ियां गिनता फिरेगा? और जहां हीरे-जवाहरात हाथ में आ जाएं, वहां कोई समुद्र के किनारे रंगीन पत्थर, सीप, मोती

इकट्ठे करते फिरता है? बात गई।

लोग मुझसे कहते हैं, कि आप तो—हम अलग-अलग बीमारियां लेकर आते हैं, इलाज एक ही बता देते है। मैं भी क्या कर सकता हूं? इलाज एक ही है। लोग चाहते हैं उनकी बीमारियों की मैं चर्चा करूं। उनकी बीमारियों पर ध्यान दूं। विशिष्टता है, वे अलग बीमारी लाये हैं। बीमारी का कोई मूल्य नहीं है। औषधि तो एक है। औषधि रामबाण है। कोई अलग-अलग इलाज की जरूरत नहीं है।

तुम सबकी बीमारी एक है; वह आत्म-अज्ञान है। बाकी सब बीमारियां उस बीमारी की छायायें हैं। छायाओं से कौन लड़ेगा? लड़ कर कौन कब जीता है? तुम मूल बीमारी पर चोट कर दो। इसलिये समस्त ज्ञानी कहते हैं, आत्मज्ञान के लिये ध्यान एक मात्र कुंजी है।

और तब ऐसी घटना घटती है,

'धरती उलटि आकाशहि ग्रासै—'

कि तुम, जो छोटे मालूम पड़ते हो, छोटे हो नहीं। तुमने वामन का अवतार लिया होगा, मगर वामन में भी परमात्मा का अवतार छिपा है। तुम कितने ही छोटे हो, तुम छोटे हो नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक सर्कस आया था और उसने सर्कस में दरख्वास्त दी। कोई और काम मिल नहीं रहा था, उसने सोचा, सर्कस में ही भरती हो जाए। दरख्वास्त में उसने लिखा कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा ठिगना आदमी हूं। मैनेजर भी थोड़ा चकित हुआ, कि यह किस तरह का आदमी है? सबसे बड़ा ठिगना आदमी? बुलाने योग्य है। क्योंकि सर्कस तो ऐसे करिश्मों में उत्सुक रहते है। नसरुद्दीन को बुलाया। जब नसरुद्दीन यहां जाकर खड़े हुए तो मैनेजर भी थोड़ा परेशान हुआ। होंगे कम-से-कम छह फीट चार इंच। उसने कहा, तुम अपने को ठिगना आदमी कहते हो? उसने कहा, मैंने पहले ही लिखा है, सबसे बड़ा ठिगना आदमी। मुझसे बड़ा कोई ठिगना आदमी नहीं।

तुम कितने ही ठिगने हो। तुम कितने ही वामन हो, कितना ही छोटा रूप रखा हो तुमने, पर पूरा परमात्मा तुममें मौजूद है। रत्ती भर कम नहीं। बूंद में सागर मौजूद है। बूंद में सागर का सारा सार मौजूद है। एक बूंद को समझ लो, सारा सागर समझ में आ गया। अब बचा क्या सागर में समझने को! एक

बूंद का सूत्र पकड़ में आ जाए। एच. टू. ओ.; पूरा सागर पकड़ में आ गया। एक बूंद को तोड़ कर जान लिया कि उद्‌जन और आक्सीजन का मेल है, पूरा सागर का रहस्य खुल गया। अब कोई हरेक बूंद को थोड़े ही जानना पड़ेगा।

इसलिए कबीर का वचन है, 'हेरत-हेरत हे सखि, रह्या कबीर हिराई। बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।' यह पहला वचन है। इसके वर्षों बाद उन्होंने दूसरा वचन भी लिखा। पहले वचन में वे कहते हैं, बूंद समानी समुंद में सो कत हेरी आई।' बूंद समुद्र में खो गई। अब उसे वापस कैसे निकालूं?

कुछ वर्षों बाद उन्होंने पद को फिर से लिखा और लिखा, 'हेरत-हेरत हे सखि रह्या कबीर हिराई, समूंद समाना बूंद में सो कत हेरी जाई।' समुद्र बूंद में समा गया। अब उसको कैसे निकालें? बूंद समुद्र में गिरी थी, तो कोई रास्ता भी तो था निकलने का। छोटी चीज बड़ी चीज में गिरी थी। खोज लेते। अब तो बड़ी मुश्किल हो गई। समुद्र बूंद में गिर गया। अब कहां खोजूं?

दूसरा पद समाधि का है। पहला पद ध्यान का है। पहले पद में कबीर को ध्यान की पहली झलक मिली होगी। जिसको जापान में सतोरी कहते हैं—पहिली झलक। पहिली झलक में ऐसे ही लगता है कि बूंद गिर गई समुद्र में। लेकिन जब ध्यान परिपूर्ण होता है, जब ध्यान समाधि बनता है। जब ध्यान से वापस लौटना बंद हो जाता है, जब ध्यान सतत रहता है, अहर्निश बहती है धारा; अखंड होता है, तब दूसरा पद कबीर ने लिखा है: 'समुंद समाना बूंद में सो कत हेरी आई।' अब और मुसीबत हो गई। बूंद तो खोज भी लेते। किसी तरह निकाल भी लेते। अब यहां समुद्र बूंद में गिर गया है। अब खोजने का कोई उपाय न रहा।

और यह सच है। ध्यान के बाद तो लौटना सम्भव है, समाधि के बाद लौटना सम्भव नहीं है। ध्यानी तो वापस लौट सकता है, गिर सकता है। ध्यानी चढ़ता है शिखर पर। किसी क्षण पर ध्यान की प्रागढ़ता होती है। फिर सो जाता है। फिर वापस उतर आता है। फिर अंधेरी गलियों में भटकने लगता है। फिर घाटियों का अंधेरा आ जाता है। पहाड़, सूरज खो जाता है। शिखर की चमक खो जाती है। फिर चढ़ता है, फिर खोता है। ध्यानी तो बहुत बार लौटता है।

इसलिए सतोरी समाधि नहीं है।

समाधि तो ऐसी अवस्था है, जिससे लौटना नहीं होता। बुद्ध ने दो शब्द उपयोग किये हैं। ध्यानी को वे कहते हैं, स्रोतापन्न, जो नदी की धारा में उतरा, लेकिन चाहे तो लौट सकता है। किनारा अभी मौजूद है। 'स्रोतापन्न—स्रोत में उतरा।' बस, उतरा ही है अभी। चाहे तो छलांग लगाकर वापस किनारे पर आ जाये।

समाधिस्थ को बुद्ध कहते हैं अनगामी; जो फिर नहीं लौट सकता। जैसे नदी सागर में गिर जाए। फिर किनारा बचता ही नहीं है। कबीर का पहला सूत्र तो स्रोतापन्न का है, और दूसरा सूत्र अनागामी का। वह फिर कभी नहीं लौटता। 'पाइंट आफ नो रिटर्न'—अनागामी। फिर नहीं आता। फिर कोई उपाय नहीं। फिर वह समाधि में ही भोजन करता, समाधि में ही सोता, समाधि में ही चलता, समाधि में ही बोलता। उसका होना समाधिस्थ होगा। सागर बूंद में खो गया।

'धरति उलटी आकाशहि ग्रासै, यह पुरिसा की वाणी।'

यह परम-पुरुषों की वाणी है। आप्त-पुरुषों की वाणी है। जिन्होंने जाना है, उनकी वाणी है। ऐसी घड़ी आती है कि बूंद ग्रस लेती है सागर को। ऐसा अंश ग्रस लेता है अंशी को। ऐसी घड़ी आती है, आत्मा में परमात्मा लीन हो जाता हैं। ऐसी घड़ी आती है, कि अणु में विराट छिप जाता है।

'बाज पियालै अमृत सोख्या··'

इस घड़ी में पीना नहीं पड़ता और अमृत पिया जाता है। प्याली की जरूरत नहीं होती। पीने की जरूरत नहीं होती। 'बाज पियाले अमृत सोख्या' अमृत पिया जाता है। न प्याली की जरूरत होती, न पीने की जरूरत होती।

'···नदी नीर भरि राख्या—'फिर नदी सागर में नहीं गिरती। अब तो सागर ही नदी में गिर गया। फिर तो नदी में ही सागर समा जाता है।

'···नदी नीर भरि राख्या।'

इसलिए समाधिस्थ व्यक्ति भरा है अनंत सागर से। तुम कितना ही उससे ले लो, चूकेगा न। तुम जितना चाहो, उतना ले लो। लेने में संकोच मत करना। 'नदी नीर भरि राख्या।' अब तो नदी नहीं है यह, कि तुम चुका दो। कि गर्मी के दिन आये और सुख जाये, रेत रह जाये। अब यह कोई नदी नहीं है जिसे

सूरज सुखा दें। 'नदी नीर भरि राख्या'—अब तो नदी सागर को भर ली अपने में। अब यह सुखेगी न। कोई सूरज इसे सुखा न सकेगा। अब कोई ग्रीष्म न आएगा। अब यह सदा भरपूर रखेगी। समाधि सदा हरी अवस्था है। सदा यौवन।

'कहे कबीर ते बिरला जोगी धरणि महारस चाख्या।'

उस जोगी को कबीर कहते हैं, वह बिरला।

तीन तरह के लोग मैंने तुमसे कहे। एक असाधु जो धरती का रस चखने की कोशिश करते हैं। लेकिन जानते नहीं, कैसे चखे? जानते नहीं, कहां से चखे! असाधु सुख के पाने की कोशिश करता है। लेकिन जानता नहीं सुख कैसे पाया जाये।

पाने की कोशिश तो असाधु भी सुख की ही करता है, पाता दुख है। आकांक्षा तो सुख की है, मिलता दुख है। क्योंकि आकांक्षा पर्याप्त नहीं है। जरूरी है, काफी नहीं है। फिर मार्ग भी चाहिए। फिर विधि भी चाहिए। फिर ठीक-ठीक खोज भी चाहिए। ठीक खोज के लिये चेतना चाहिए, होश चाहिये। असाधु सुख खोजता है, लेकिन जहां खोजता है, वहां दुख पाता है।

साधु भी सुख खोजता है। उसके पास थोड़े सूत्र भी है, लेकिन उलटे है। जैसे चाबी को कोई उलटा ताले में लगाता हो, तो ताला नहीं खुलता। सिर मारता है साधु। चाबी हाथ में है। उलटी पकड़ी है। ताला बिलकुल करीब है। जरा चाबी को ठीक कर लेने की जरूरत है। लेकिन उलटी चाबी को ताले में डालने की कोशिश करता है। उससे कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है, कि ताला भी खराब हो जाता है। फिर शायद सीधी भी कर लो चाबी, तो भी मुश्किल होती है खोलने में।

फिर संत पुरुष हैं, जो चाबी को सीधा पकड़ते हैं। जो एक को खोजते हैं। एक को साधते हैं। निज-तत्व को जानते हैं। फिर उनकी कहनी, रहनी एक हो जाती है। ताला खुल जाता है।

तुमने ताले देखे हैं, ऐसे ताले, जो पहेली की तरह होते हैं? जिनमें चाबी नहीं लगानी पड़ती। जिनमें कुछ नंबर लगे होते हैं। बहुत बड़े धनी लोग उस तरह के ताले उपयोग करते हैं। नम्बरों को एक खास ढंग पर बिठाना पड़ता है तो ताला खुल जाता है। वह तो कोई जानता है। जो जानता है, वही नम्बरों को खास ढंग

में बिठा सकता है। चोर उसकी चाबी नहीं बना सकते। क्योंकि वह तो बड़ा गणित का सवाल है। वर्षों मेहनत करके भी कोई उसको ठीक से नहीं जमा सकता। जानता है, तो ही ठीक जमा सकता है। क्योंकि अगर तुम ऐसा भूलचूक के सिद्धांत से जमाने की कोशिश करो, तो लाखों बार जमाओगे तब कहीं एक आध बार जम जाये। वह भी पक्का नहीं है।

ये कहनी और रहनी अंग है उस ताले पर। ये दोनों बिलकुल ठीक जम जाते हैं जब तुम वही कहते हो, जो तुम हो। जब तुम वही हो, जो तुम कहते हो। जब तुम्हारे होने में कोई द्वंद्व नहीं रह जाता, एक ही संगीत छा जाता है, तब ताला खुल जाता है। संत पुरुष ताले को खोल लेते हैं एक को जानकर। वे दो को जमा लेते हैं। जमाना पड़ता नहीं, वे अपने आप जम जाते हैं। एक के जानने में दो जम जाते हैं। अद्वैत के जानने में द्वैत जम जाता है।

'कहे कबीर ते बिरला जोगी धरणी महारस चाख्या।'

और ऐसा व्यक्ति परमात्मा का ही आनंद नहीं लेता, ऐसा व्यक्ति धरती के भी महारस को चखता है। ऐसा व्यक्ति परम तत्व को तो चखता ही है, उस परमात्मा को भी पीता है, लेकिन इस प्रकृति को भी पीता है। वह फूलों को देखकर भी आनंदित होता है। और तुम इतने आनंदित न हो सकोगे फूलों को देखकर।

सोचा थोड़ा, बुद्ध को फूलों के पास से गुजरते! बुद्ध को जैसा अनंद मिलेगा फूल में, तुम्हें न मिलेगा। क्योंकि असली सवाल फूल नहीं है। असली सवाल तुम हो। बुद्ध अपने आन्नद-भरे हृदय से फूल की तरफ देखते हैं। फूल अनंत रहस्य से भर जाता है। फूल में तुम वही देखते हो, जो तुम हो। फूल तो दर्पण है। फूल के दर्पण में बुद्ध अपने को ही देखते हैं। इसलिए फूल जो सुवास बुद्ध को देगा, वह तुम्हें न देगा।

जिसने अपने हृदय की कुंजी पा ली, जिसने भीतर का हृदय खोल लिया, उसके हाथ में 'मास्टर-की आ गई। उसके हाथ में मूल कुंजी आ गई। वह फूल को भी खोल लेगा। वह झरने को भी खोल लेगा। वह भोजन को भी खोल लेगा। वह प्रेम को भी खोल लेगा। और सब तरफ से उस पर वर्षा हो जाएगी। उसकी संवेदनशीलता अनंत हो जाती है।

ध्यान रखना, महायोगी संवेदनशून्य नहीं होता, महासंवेदनशील होता है।

महायोगी अस्वाद में नहीं जीता, परमस्वाद में जीता है। इसलिए परमस्वाद को बनाना अपना व्रत। और महायोगी संसार के विपरीत नहीं होता। संसार से भी परमात्मा के ही रस को पाता है।

एक बार खुद का दिया जल जाये, कि सभी तरफ से आनंद की धाराएं बहनी शुरू हो जाती हैं। इसलिए कबीर उसको महायोगी कहते हैं। बिरला योगी कहते हैं।

'...धरणी महारस चाख्या।'

योगी है...जो परमात्मा का रस चखते हैं, वह महायोगी नहीं। उनका परमात्मा अभी आधा है। वे अधूरे योगी है, जो आंख बन्द करके परमात्मा का रस तो चख लेते हैं, आंख खोलकर प्रकृति का रस चखने में डरते हैं। इनका योग पूरा नहीं हैं, ये भयभीत हैं। इनका परमात्मा काफी नहीं हैं। इनका परमात्मा इतना काफी नहीं है, कि ये डरें न।

वास्तविक योगी भीतर आंख बन्द कर के परमात्मा को चखता है। आंख खोल कर जगत को चखता है। भीतर चैतन्य को चखता है। बाहर संवेदनाओं को चखता है। बाहर और भीतर खो ही जाता है। बाहर और भीतर एक हो जाते हैं। जो बाहर है, वही भीतर है। जो भीतर है, वही भीतर है। जब तक बाहर भीतर का भेद है, तब तक तुम महायोग को उपलब्ध नहीं हुए। जिस दिन एक ही रह जाता है, क्या बाहर और क्या भीतर? तुम्हारे घर के बाहर जो आकाश है, वही तुम्हारे घर के भीतर भी है। जो तुम्हारे आंगन में समाया है, वही तो परम आकाश में भी फैला हुआ है।

आंगन और आकाश में भेद कहां है? एक ही है। एक ही की लहरें डोल रही हैं, बाहर और भीतर, बाहर-भीतर दो किनारे हैं। चैतन्य का सागर बीच से बह रहा है।

'कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणी महारस चाख्या।'

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, रस के विरोध में मत जाना। महारस को चखना जीभ को जला मत लेना। आंख को फोड़ मत लेना। कान को बधिर मत कर लेना। नाक को मार मत डालना—जगाना। उनको संवेदनशील बनाना। घबड़ाना मत।

मैं इस कहानी में भरोसा नहीं करता कि सूरदास ने आंख फोड़ लीं— इस

डर से कि आंखों से देखते हैं, तो सुन्दर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। अगर उन्होंने ऐसा किया हो तो सूरदास दो कौड़ी के हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसा किया होगा क्योंकि सूरदास के वचनों में ऐसा रस है, इसलिए मैं कहता हूं कि नहीं किया होगा। वचनों में ऐसा रस है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा? यह कहानी नासमझों की गढ़ी होगी। जिसके वचनों में इतना प्रेम है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा? जिसके वचनों में कृष्ण के रूप का ऐसा वर्णन है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा?

नहीं। सूरदास अगर रहे होंगे, तो सुन्दर स्त्रियों में भी उन्हें कृष्ण ही दिखाई पड़े होंगे। सूरदास अगर रहे होंगे, तो सुन्दर स्त्री की पायल में उनको कृष्ण की ही झंकार सुनाई पड़ी होगी। सूरदास अगर रहे होंगे, तो सुन्दर स्त्री के रूप में भी उन्होंने उस एक का ही रूप देखा होगा।

मैं तुमसे नहीं कहता। रस को मारना मत, अन्यथा तुम कभी भी पूरे परमात्मा को जानने में समर्थ न हो जाओगे। और अधूरा परमात्मा भी कोई परमात्मा है? अधूरा परमात्मा तो ऐसे ही है, जैसे कोई कहे आधा वृत्त। आधा कहीं वृत्त होता है! वृत्त तो पूरा होता है। तभी होता है। तभी होता है। आधा परमात्मा कही परमात्मा होता है? यह तो तुम्हारी मन की धारणा होगी, सिद्धांत होगा, शास्त्र होगा।

परमात्मा तो पूर्ण है। प्रकृति उसका अंग है। शरीर उसका घर है। तुम महारस को उपलब्ध हो सको, इसका ध्यान रखना। रूप में अरूप दिखाने लगे, आकार को निराकार दिखाने लगे। शुद्ध में विराट की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी तब तुम अवस्था को उपलब्ध हो जाओगे, जिसको कबीर कहते हैं—

'कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणी महारस चाख्या।'

□

प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरे नाही ।
नजर करो अब मिहर की, मोहि मलो गुसाई ।।
बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा ।
तुम देखन की चाव हैं, प्रभु मिला सबेरा ।।
नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागे ।
दर्दबंद दीदार का, निसि बास जागे ।।
जो अब कै प्रीतम मिलें, करूं निमिख न न्यारा ।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा ।।

3. प्रीति लागी तुम नाम की

18 मई 1975, प्रातः 8

प्रेम, जीवन की परम समाधि है। प्रेम ही शिखर है जीवन ऊर्जा का। वही गौरीशंकर है। जिसने प्रेम को जाना, उसने सब जान लिया। जो प्रेम से वंचित रह गया, वह सभी कुछ से वंचित रह गया।

प्रेम की भाषा को ठीक से समझ लेना जरूरी है। प्रेम के शास्त्र को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि प्रेम ही तीर्थयात्रा है। उससे ही पहुंचने वाले पहुंचे हैं। और जो नहीं पहुंचे, वे इसलिए नहीं पहुंचे कि उन्होंने जीवन को कोई रंग दे दिया, जो प्रेम का नहीं था।

प्रेम का अर्थ है, समर्पण की दशा, जहां दो मिटते हैं और एक बचता है। जहां प्रेमी और प्रेम-पात्र अपनी सीमायें खो देते हैं। जहां उनकी दूरी समग्र रूपेण शून्य हो जाती है। यह भी कहना उचित नहीं, कि प्रेमी और प्रेम-पात्र करीब आते हैं, क्योंकि करीब होना भी दूरी है। पास नहीं आते, एक दूसरे में खो जाते हैं। निकटता में भी तो फासला है। प्रेम उतना फासला भी बर्दाश्त नहीं करता। प्रेम दो को एक बना देता है। प्रेम अद्वैत हैं। इस प्रेम को हम थोड़ा समझें।

तुमने भी प्रेम किया है। ऐसा तो व्यक्ति ही खोजना कठिन है, जिसने प्रेम न किया हो। गलत ढंग से किया हो, गलत प्रेम-पात्र से किया हो, लेकिन प्रेम किये बिना तो कोई बच नहीं सकता। क्योंकि वह तो जीवन की सहज अभिव्यक्ति है।

तो तीन तरह के प्रेम हैं, वे समझ लें।

पहला, जिसमें सौ में से निन्यानबे लोग उलझ जाते हैं। वह वस्तुओं का प्रेम है—धन का, संपदा का, मकान का, तिजोड़ियों का। वस्तुओं का प्रेम, प्रेम के लिये सबसे बड़ा धोखा है।

लेकिन उसमें कुछ खूबी है; इसलिए सौ में से निन्यानबे लोग उसमें पड़ जाते

हैं। और वह खूबी यह है, कि वस्तुओं के प्रति तुम्हें समर्पण नहीं करना पड़ता। वस्तुओं को तुम अपने प्रति सर्तपित कर लेते हो। तुम्हारी कार, तुम्हारी कार है। तुम्हारा मकान, तुम्हारा मकान है। तुम समर्पित होने से बच जाते हो और तुम्हें यह अहसास होता है, कि वस्तुएं तुम्हारे प्रति समर्पित हैं। एक तरह का अद्वैत सध जाता है।

तुम हाथ में रुपया रखे हो। रुपये की सीमा और तुम्हारी सीमा मिट गई। रुपया बाधा नहीं डालता सीमा के मिटने में। और तुम्हें समर्पण करने के लिये मजबूर नहीं करता। रुपया समर्पित है। तुम जो चाहो करो नानुच नहीं करेगा। तुम चाहे नदी में फेंक दो, तुम चाहे भिखारी को दे दो, तुम चाहे कुछ सामान खरीद लो, तुम चाहे तिजोड़ी में सम्हाल कर रखो, रुपये की अपनी कोई मनोदशा नहीं है। रुपया पूरा समर्पित है।

तुमने समर्पित कर लिया वस्तुओं को, इससे तुम्हें अहसास होता है कि अद्वैत सध गया। यह अहसास झूठा है। क्योंकि वस्तुओं के समर्पण का कोई अर्थ ही नहीं होता। वस्तुएं तो चेतन नहीं है। उनका समर्पण, ना-समर्पण सब बराबर है। तुम भ्रांति में हो।

रुपया जितना तुम्हारे लिये समर्पित है, उतना ही उस भिखारी के लिए जिसको तुम दे दोगे, उसके लिए भी समर्पित है। नदी में फेंक दोगे, नदी के लिए भी समर्पित है। तिजोड़ी में रख दोगे, तिजोड़ी के लिए समर्पित है।

रुपया तो वेश्या है। उसका कोई समर्पण नहीं है। वह तो जिसके पास है उसी के लिए समर्पित है। उसकी कोई आत्मा थोड़े ही है। लेकिन समर्पित कर लिया किसी को इससे भीतर एक भ्रांति पैदा होती है कि अद्वैत सध गया।

सौ में से निन्यानबे लोग इसी प्रेम में जीते और समाप्त हो जाते हैं— वस्तुओं का प्रेम। यह सुविधापूर्ण भी है। क्योंकि रुपया, धन संपदा किसी तरह की कलह की स्थिति पैदा नहीं करते। तुम्हें उनसे लड़ना नहीं पड़ता। कोई संघर्ष नहीं है। बड़ी शांति है। तिजोड़ी चुप बैठी रहती है। तुम जब आज्ञा दो, सक्रिय हो जाती है। आज्ञा न दो, शांत तुम्हारी प्रतीक्षा करती है। धन परिपूर्ण सेवक है इसलिए सौ में से निन्यानबे लोग धन पाने को ही प्रेम समझ लेते हैं।

फिर धन में सुरक्षा है। किसी मित्र से प्रेम करो, पक्का नहीं है कि कल भी प्रेम करेगा। कल का कौन जानता है? क्षण भर में हवा बदल जाती है।

मौसम बदल जाता है। क्षण भर पहले जो प्रेमपूर्ण था, क्षण भर बाद क्रोध से भर जाता है। अभी जो मित्र था, अभी शत्रु हो सकता है।

इसलिए मित्र पर भरोसा नहीं किया जा सकता। पत्नी का क्या भरोसा है? पति का क्या भरोसा है? आज है, कल न हों। प्रेम का भरोसा हो, मौत का क्या भरोसा? धन कभी नहीं मरता। धन अमृत है। व्यक्ति तो मरते हैं।

कल ही एक युवती मुझसे पूछती थी, कि उसका प्रेम किसी व्यक्ति से है। लेकिन दोनों की उम्र में बड़ा फासला है। उसकी उम्र होगी कोई तीस वर्ष। और उस व्यक्ति की उम्र है पचास वर्ष। प्रेम दोनों में गहन है, लेकिन वह भयभीत है। डर है उसे कि कहीं वह व्यक्ति मर न जाए जल्दी, अन्यथा जीवन का अन्त वैधव्य होगा। जीवन का अन्त दुख से भर जायेगा। पीड़ा से भर जायेगा। इसलिए अपने को सम्हाले है। रोके है।

मौत का डर तो है। व्यक्ति मरते हैं, वस्तुएं कहां मरती हैं? और जब व्यक्ति मरते हैं, तो उनको रिप्लेस नहीं किया जा सकता। कोई दूसरा व्यक्ति उसकी जगह नहीं भर सकता। क्योंकि हर जगह हर व्यक्ति अनूठा है एक फियाट कार मर जाए, दूसरी फियाट कार उसकी जगह आ सकती है। कोई अन्तर नहीं है। एक तरह की लाखों कारें हैं।

लेकिन एक व्यक्ति मर जाये, तो उस जैसा व्यक्ति फिर इस संसार में कहीं भी नहीं है। उसे खो देने पर सदा के लिए ही खो देना होता है। कोई दूसरा उसकी जगह को भर नहीं सकता। जगह सदा रिक्त रह जाती है। और हृदय में रिक्त जगह खलती है, चोट करती है, घाव बन जाती है। खतरा है व्यक्तियों के प्रेम में पड़ना। पचास साल के व्यक्ति के प्रेम में तो खतरा है ही, तीस साल के व्यक्ति के प्रेम में भी खतरा है; क्योंकि तीस साल के व्यक्ति भी मर जाते हैं।

मौत तो सदा मौजूद है। सुरक्षा नहीं है व्यक्तियों के साथ। एक तो व्यक्ति बदल सकते हैं, न बदलें, तो भी मर सकते हैं।

और भी बड़ा खतरा है कि जिन व्यक्तियों से तुम्हें आज प्रेम है, हो सकता है कल भी तुम्हारे प्रेम में हो, लेकिन तुम उनके प्रेमी न रह जाओ। तब वे बोझ हो जायेंगे। तब उन्हें उतरना मुश्किल हो जाएगा। तब उनकी जंजीरों को तोड़ना असम्भव हो जाएगा। तब कहां भागोगे? कैसे भागोगे? और अपने ही दिए गए वचन पैर में मजबूत बेड़ियों की तरह पड़ जायेंगे। अपने ही प्रेम की

हवा में कहे गये शब्द गर्दन को जकड़ लेंगे। कहां जाओगे ? खतरा भारी है।

वस्तुओं के प्रेम में कोई भी खतरा नहीं है। बड़ी सुरक्षा है। न तो वस्तुएं मरती हैं। मिट भी जायें, तो बदली जा सकती हैं। और अगर तुम्हारा प्रेम खो जाए, तो वस्तुएं जंजीर नहीं बनतीं। एक कार को तुमने बहुत चाहा था। आज तुम्हारा मन उठ गया। बाजार में बेच आते हो। कार रोती-धोती नहीं। शोरगुल नहीं मचाती, दया की भिक्षा नहीं मांगती। चुपचाप मौन बिदा हो जाती है। इसलिए निन्यानबे प्रतिशत लोग...।

समर्पण सुविधापूर्ण है वस्तुओं का खुद समर्पण नहीं करना पड़ता, अहंकार बचा रहता है और वस्तुएं अहंकार को बढ़ाती चली जाती हैं।

प्रेम में तो अहंकार खोयगा। वस्तुओं के प्रेम में बचता है, बढ़ता है। जितनी तुम्हारी संपदा होती है उतना अहंकार ऊपर उठने लगता है। वस्तुओं का प्रेम वस्तुत: प्रेम नहीं है, प्रेम का धोखा है। लेकिन वही पहला प्रेम है, जिसमें निन्यानबे प्रतिशत लोग पड़े हैं। इसलिए बुद्ध तृष्णा के विरोध में हैं, क्योंकि तृष्णा वस्तुओं के प्रेम का नाम है। महावीर परिग्रह के विरोध में हैं, क्योंकि परिग्रह वस्तुओं के प्रेम का नाम है। समस्त ज्ञानी संग्रह के विरोध में हैं। क्योंकि संग्रह का अर्थ है, तुम्हारा प्रेम गलत यात्रा कर रहा है।

ऐसा जो व्यक्ति है, जो वस्तुओं के प्रेम में पागल है। तुमने कृपण को देखा ? उसके चेहरे को कभी अध्ययन किया ? अगर तुम खुद कृपण हो, तो कभी आइने में तुमने अपनी कृपणता की छवि देखी ? कृपण आदमी से ज्यादा कुरूप आदमी नहीं होता।

इसलिए कोई तुम्हें कंजूस कह दे तो बड़ी चोट लगती है। भला तुम कंजूस हो, लेकिन कंजूस कोई कह दे तो बड़ा आघात लगता है। इससे बड़ी गाली नहीं मालूम होती, कि कोई तुम्हें कृपण कह दे। क्यों ?

क्योंकि कृपण का अर्थ है, तुम वस्तुओं के प्रेम में पड़े हो। वस्तुएं तुमसे नीची हैं। तुम आत्मवान हो। तुम अपने से नीचे के प्रेम में पड़े हो। और यह बात कोई स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि मैं वस्तुओं के प्रेम में पड़ा हूं। वस्तुओं के प्रेम का अर्थ है कि तुम्हारी आत्मा नीचे झुक रही है। वस्तुओं के प्रेम का अर्थ है कि तुम अपनी आत्मा खो रहे हो। क्योंकि जहां तुम्हारा प्रेम होगा, वहीं तुम्हारी आत्मा होगी। जहां तुम्हारा प्रेम होगा, वहीं तुम्हारा हृदय

धड़केगा।

जो व्यक्ति वस्तुओं को प्रेम करता है, वह धीरे-धीरे वस्तुओं जैसा हो जाता है। क्योंकि प्रेम बड़ा रूपांतरण करने वाला तत्व है। तुम जिसे प्रेम करते हो, उसी जैसे हो जाते हो।

तुमने कभी ख्याल किया कि दो व्यक्ति अगर एक दूसरे को प्रेम करते हैं तो धीरे-धीरे उनमें एक दूसरे की छवि दिखाई पड़ने लगती है। अगर एक स्त्री ने किसी पुरुष को एकांत भाव से प्रेम किया हो तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, उसकी आंखों में उसके चलने में, उसके चेहरे पर उस पुरुष की छाप आने लगती है।

अगर किसी पुरुष ने किसी स्त्री को एकांत रूपेण प्रेम किया हो, तुम पाओगे कि उसकी वाणी में उस स्त्री का माधुर्य समा जाता है। उनके हाव-भाव में, भंगिमाओं में एक दूसरे प्रविष्ट हो जाते हैं। अगर उन्होंने ठीक से प्रेम किया हो, तो तुम भीड़ में भी उनको खोज सकते हो कि दोनों एक दूसरे के प्रेमी मालूम पड़ते हैं। क्योंकि एक दूसरे की छवि उनमें धीरे-धीरे प्रविष्ट हो जाती हैं। प्रेमी धीरे-धीरे एक जैसे हो जाते हैं।

शरीर-शास्त्री बहुत चिंतन करते रहे हैं, कि यह कैसे घटित होता है ? बच्चा पैदा होता है, तो कभी तो बच्चे में छवि स्त्री की झलकती है, कभी पुरुष की झलकती है। कभी दोनों की नहीं जलकती, कभी दोनों की सम्मिलित झलकती है। कभी बिल्कुल ही किसी तीसरे व्यक्ति की छवि झलकती है, जिसकी झलकती है, उसका कोई लेना-देना नहीं है।

शरीर-शास्त्री चिंतित रहे कि यह कैसे घटित होता है ? अगर स्त्री-पुरुष के ही ऊर्जा से ही निर्माण हुआ है, तो सदा घटना एक सी ही घटनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता। मनोवैज्ञानिक एक अनूठी बात पर पहुंचे हैं और वह यह है कि अगर स्त्री पुरुष को ठीक से प्रेम करती हो, पूर्ण प्रेम करती हो, तो ही उसके बच्चे में पति की छवि झलकेगी। क्योंकि वह छवि उसमें लीन हो जाती है। यह उसके रोंये-रोंये में समा जाती है।

अगर स्त्री अपने को ही प्रेम करती हो, पति को प्रेम नहीं करती हो, और पति एक नौकर-चाकर हो, तो स्त्री को स्वयं की छवि ही उसमें प्रवेश होगी। और यह भी हो सकता है कि स्त्री पत्नी तो किसी और की हो, बच्चा किसी और

से ही पैदा हुआ हो, लेकिन भाव किसी और पुरुष का मन में हो, तो उस पुरुष की छवि भी उस बच्चे में प्रवेश कर जायेगी।

क्योंकि छवि तो मन में झलकती है। मन के दर्पण पर बनी हुई छाया है। अगर एक स्त्री किसी व्यक्ति को प्रेम करती है और बच्चा किसी और से पैदा होता है, तो भी जिसको वह प्रेम करती है, वही उस बच्चे में झलक आयेगा। तो छवि शरीर से निर्मित नहीं होती, छवि मन से निर्मित होती है।

दो व्यक्ति जब एक दूसरे को प्रेम करते हैं, तो धीरे-धीरे एक जैसे होते जाते हैं—उनके ढंग, उनकी आदतें, उनका व्यवहार। आखिरी क्षणों में जीवन के तुम उन्हें पाओगे, कि वे एक ही हो गये। उनकी दुई खो गई।

वस्तुओं को जो व्यक्ति प्रेम करता है, वह वस्तुओं जैसा हो जाता है। इसलिए कृपण से ज्यादा कुरूप आदमी संसार में दूसरा नहीं। क्योंकि विराट् आत्मा थी और क्षुद्र के प्रेम से छोटी हो गई। इसलिए कृपण को तुम हमेशा छोटा पाओगे। हमेशा ओछा पाओगे। वह मनुष्यता की कसौटी पर भी पूरा नहीं उतरता। परमात्मा की कसौटी की बात ही अलग है। तुम पाओगे, कि वह पूरा मनुष्य भी नहीं है। उसकी मनुष्यता में भी कुछ कमी मालूम पड़ती है। वस्तुएं ज्यादा हैं उसके ऊपर; चेतना कम है। होश कम है, बोझ ज्यादा है। कृपण आदमी के चेहरे पर तुम्हें धन में जो छिपी हिंसा है, वह दिखाई पड़ेगी।

धन बड़ी गहरी हिंसा से पैदा होता है। वह गहन शोषण है। धन पर रक्त के चिन्ह तो हैं ही उससे धन मुक्त हो नहीं सकता। वह किसी से छीना गया है। किसी के साथ जबरदस्ती की गई है। किसी को मिटाया गया है। चाहे मिटाने के ढंग कितने ही परिष्कृत क्यों न हों। मिटाने वाले को भी पता न चलता हो, मिटने वाले को भी पता न चलता हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन धन पर खून के धब्बे हैं।

इसलिए कृपण के चेहरे पर भी धब्बे आ जायेंगे। और कृपण के चेहरे से तुम लार टपकती हुई देखोगे। वह हमेशा वस्तुओं के लिए दीवाना है, पागल है। उसे वस्तुएं ही दिखाई पड़ती हैं। और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। संसार उसके लिए व्यक्तियों का महोत्सव नहीं, केवल वस्तुओं का बाजार है। खरीदना है, इकट्ठा करना है, मर जाना है। जीना नहीं है।

कृपण जीता नहीं, केवल जीने की तैयारी करता है। तैयारी कभी पूरी नहीं होती। जीने का मौका कभी नहीं आता। सिर्फ समायोजन करता है कि कभी जीयेंगे। जीने को स्थगित करता है, पोस्टपोन करता है। आज कैसे जी सकते हैं, जब तक महल न हो? आज जीना संभव ही कैसे है, जब तक तिजोरी भरपूर न हो? जब तक सारे कलों के लिये इन्तजाम न कर लिया हो और भविष्य पूरा सुरक्षित न कर लिया हो, तब तक जी कैसे सकता है? मूढ़ जी सकता है, कृपण कहता है, समझदार कैसे जी सकता है? कल की चिंता निश्चिंतता में बदल जाये तिजोरी हो, बैंक-बेलेंस हो, फिर मैं जीऊंगा।

ऐसी घड़ी कभी नहीं आती। सिकन्दर को नहीं आती, तुम्हें कैसे आ सकती है? किसी को नहीं आती। ऐसी घड़ी आती ही नहीं जब समायोजन पूरा हो जाये।

जिन्हें जीना है, उन्हें हमेशा आधे समायोजन में ही जीना होता है। जिन्हें जीना है, उन्हें हमेशा आधी तैयारी में ही जीना होता है। उन्हें आज ही जीना होता है। जिन्हें हंसना है, नाचना है, वे इसकी बहुत चिंता नहीं करते कि आंगन टेढ़ा है···कहावत है, 'नाच न आवे आंगन टेढ़ा।' जीने की कला नहीं आती और लोग कहते हैं आंगन टेढ़ा है, पहले सीधा कर लें। वह कभी सीधा हुआ मालूम होता नहीं। वे मर जाते हैं, आंगन टेढ़ा ही रहता है।

वस्तुओं को इकट्ठा करने वाले के चेहरे पर तुम्हें रुपये का घिसा-पिटापन दिखाई पड़ेगा। जैसे रुपया सरकता है हाथों-हाथ। बासा होता जाता है। हर हाथ की गंदगी उसमें लगती जाती है। हर प्राण की तृष्णा उसमें भरती जाती है। रुपया सरकता जाता है एक हाथ से दूसरे हाथ, हजारों हाथ।

रुपये से ज्यादा झूठा इस संसार में और कुछ नहीं हो सकता। उच्छिष्ट! कितने हाथों में चलता है। कितनी गंदगियों से गुजरता है। कितनी यात्रा करता है। घिस-पिट जाता है। वैसी ही घिसन और घिसापिटापन तुम्हें कृपण के चेहरे और आंखों पर दिखाई पड़ेगा। वहां तुम्हें ताजगी न दिखेगी सुबह की ओस की। वहां तुम्हें फूलों की गंध दिखेगी नये-नये खिले। वहां तुम्हें रुपये का घिसापिटापन दिखाई पड़ेगा।

कृपण कभी मौलिक नहीं होता। हमेशा उधार होता है। उसके जीवन में कभी कोई ऊर्जा सुबह जैसी नहीं होती। हमेशा थकान होती है। वह हमेशा ऊबा

हुआ होता है।

स्वाभाविक है कि धन के साथ किसी के जीवन में नृत्य न कभी आया है, न आ सकता है। ऊब आती है। इसलिए धनी आदमी को तुम बोअर्ड पाओगे, ऊबा हुआ पाओगे। तुम उसके चेहरे पर गौर करोगे तो तुम पाओगे वह थका है। उसे विश्राम चाहिये। वह विश्राम कर नहीं सकता, क्योंकि वस्तुएं अभी बहुत बाकी हैं, जो इकट्ठी करनी हैं।

धीरे-धीरे कृपण व्यक्ति वस्तुओं जैसा हो जाता है। उसमें और उसकी वस्तुओं में बहुत फर्क नहीं रह जाता। उसके और उसके मकान में बहुत फर्क नहीं रह जाता। क्योंकि प्रेमी एक जैसे हो जाते हैं। इसलिए कभी क्षुद्र से प्रेम मत करना। अन्यथा तुम क्षुद्र हो जाओगे। तुम वही हो जाओगे, जिसको तुम प्रेम करोगे।

धन और वस्तुओं का प्रेमी मनुष्यों को घृणा करता है। क्योंकि हर मनुष्य उसके धन के लिए खतरा है। हर मनुष्य और मनुष्य का सम्बन्ध उसे भयभीत करता है। क्योंकि मनुष्य के साथ सम्बन्ध बनाने का अर्थ होता है, अपने धन में भागीदार खोजना। कृपण मनुष्यों से बचना चाहता है। मनुष्यों से दूर रहना चाहता है। मनुष्यों से एक फासला रखता है, कि कहीं कोई जेब तक न पहुंच जाये। उसकी तिजोरी तक न आ जाये।

कृपण, वस्तुओं को प्रेम करने वाला व्यक्ति मनुष्यों के प्रति घृणा से भरा होता है, और परमात्मा के प्रति उपेक्षा से। इसलिए वास्तविक नास्तिक कृपण है, वस्तुओं का प्रेमी है। वह चाहे मन्दिर में पूजा करता हो, उसकी पूजा के पीछे भी धन की ही मांग छिपी होती है। वह परमात्मा को नहीं मांगता, वह और धन को मांगता है।

परमात्मा और मौजूद भी हो जाये, और उससे कहे, तू एक वरदान मांग ले, तो वह परमात्मा को छोड़कर और सब चीजों की सोचेगा। कि एक रोल्स रायस मांग लूं, कि राष्ट्रपति पद मांग लूं, कि सारी दुनिया की सम्पदा मांग लूं। एक बात उसे याद न आएगी कि परमात्मा को मांग लूं। उस भर को वह सोच भी न सकेगा। वह उसकी सीमा के बाहर है।

वस्तुओं से जो घिरा है, वह मनुष्यों से घृणा करेगा और परमात्मा की उपेक्षा। और बड़े मजे की बात तो यह है, कि वे ही लोग तुम्हें मन्दिरों, मस्जिदों में बैठे मिलेंगे। इन्हीं से मन्दिर, मस्जिद भरे हैं। इन्हीं के कारण धर्म मर गया। वस्तुएं मांगने ही वहां जाते हैं। इनकी तिजोरी और कैसे बड़ी हो जाये! इनका राज्य और कैसे फैले, इसकी ही मांग करने परमात्मा के पास जाते हैं।

ध्यान रखना, जो परमात्मा के पास परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ मांगने गया, वह उसके पास कभी पहुंच ही नहीं पाता। जानने वाले तो कहते हैं कि उसके पास वे ही पहुंच पाते हैं, जो उसको भी नहीं मांगते। जो मांगते ही नहीं। जिनकी मांग ही खो जाती है। जो बिना मांगे उसके द्वार पर खड़े हो जाते हैं। 'बिन मांगे मोती मिले'। वह बरस आता है उनके ऊपर।

लेकिन वह बहुत दूर की बात है। क्योंकि बुद्ध कभी उसके द्वार पर बिना मांगे खड़ा होता है। लेकिन तुम जिस जगत में जी रहे हो—भिखारियों के—वहां कम से कम इतना तो कर ही सकते हो, कि परमात्मा को मांगो।

इतना ही फर्क है भक्त और ज्ञानी में। भक्त परमात्मा को मांगता है, ज्ञानी उतना भी नहीं मांगता। इसलिए ज्ञान से ऊंची भक्ति नहीं है। इसलिए भक्ति द्वार तक पहुंचा देती है। लेकिन आखिरी क्षण में भक्ति को भी खो जाना पड़ता है। क्योंकि तभी मिलन पूरा होता है जब परमात्मा की मांग भी छूट जाती है। क्योंकि उतनी मांग भी तो जब परमात्मा और तुम्हारे बीच में बनी रहेगी। उतनी मांग भी नहीं चाहिए।

नास्तिक वही है, जो वस्तुओं से घिरा है। इसलिए पश्चिम नास्तिक है। इस लिए नहीं, कि वहां लोग परमात्मा को नहीं मानते। तुमसे ज्यादा लोग चर्च जाते हैं। हिन्दुओं के पास तो मन्दिर जाने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। जाओ, न जाओ। जब मौज हो, जाओ। लेकिन ईसाइयों में तो व्यवस्था है कि रविवार आना ही है।

अगर तुम्हारे मंदिरों की कोई जांच करें मंगल ग्रह से आकर, तो सदा उनको खाली पायेगा। या कभी इक्के दुक्के आदमी आते हुए जाते हुए मालूम पड़ेंगे। किसी की पत्नी बीमार है, जाना पड़ा। किसी का दिवाला निकलने के करीब है, आना पड़ा।

लेकिन चर्चों में भरे हुए लोग पाए जाएंगे। क्योंकि रविवार नियम से जाना है। वह एक सामाजिक औपचारिकता है। लेकिन पश्चिम की दौड़ वस्तुओं के लिए

है। इसलिए पश्चिम अस्तिक हो नहीं सकता।

इससे तुम यह मत सोच लेना कि तुम अस्तिक हो। अक्सर ऐसा होता है, कि जब भी कोई कहता है कि पश्चिम अस्तिक नहीं है, तब तुम बड़े प्रसन्न होते हो। तुम सोचते हो, हम आस्तिक हैं। तुम भी अस्तिक नहीं हो।

आस्तिक होना बड़ी क्रांतकारी घटना है। उसका पूरब-पश्चिम से कोई लेना देना नहीं है। वह भूगोल की बात नहीं है। अस्तिक होना तो परम क्रांति है। कभी कोई व्यक्ति आस्तिक होता है, समाज तो अब तो कोई आस्तिक नहीं हुआ। न हिंदू समाज, न जैन समाज, न भारतीय समाज, न चीनी समाज। कोई समाज, कोई राष्ट्र अब तक धार्मिक नहीं हुआ। क्योंकि समूह तो निन्यानबे प्रतिशत लोगों से बना है—वे जो वस्तुओं के प्रेमी हैं।

दूसरा प्रेम है, व्यक्तियों का प्रेम। व्यक्तियों का प्रेम वस्तुओं से ऊपर है। कम से कम तुम समानधर्मा, समान जातीय व्यक्ति से प्रेम करते हो। कम से कम तुम किसी चैतन्य से प्रेम करते हो। माना, वह भी तुम जैसा अंधकार से भरा है। फिर भी उसकी जागने की संभावना है; जैसी तुम्हारी है। व्यक्तियों का प्रेम वस्तुओं के प्रेम के ऊपर है। जो व्यक्तियों को प्रेम करता है, उसके जीवन में वस्तुओं के प्रति उपेक्षा होती है। और परमात्मा के प्रति तटस्थता होती है।

इन शब्दों को ठीक से समझ लेना। क्योंकि भाषा-कोष में उपेक्षा और तटस्थता का एक ही अर्थ लिखा है। वह गलत है। जो व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करता है, वह वस्तुओं के प्रति उपेक्षा से भर जाता है। वह वस्तुओं को दे सकता है, सहजता से दान कर सकता है। उसकी पकड़ नहीं रह जाती।

क्योंकि जिसने व्यक्तियों को प्रेम कर लिया, जिसने ऊंचे प्रेम के रस को चख लिया, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ जाता है कि वस्तुओं से तो कभी कुछ मिलने वाला नहीं है। व्यक्तियों से मिलने वाला है। इसलिए व्यक्तियों को वस्तुएं देने में उसे अड़चन नहीं आती। वह बांट सकता है। वह दानी हो सकता है। वह कृपण नहीं रह जाता। कृपणता उसकी खो जाती है। वह जानता है कि व्यक्तियों के प्रेम में सुरक्षा नहीं है। लेकिन व्यक्तियों का प्रेम जीवंत है।

वस्तुओं का प्रेम मुर्दा है, सुरक्षा है। वैसे ही जैसे प्लास्टिक के फूल में सुरक्षा होती है। मिटने का डर नहीं होता। असली गुलाब का फूल तो सुबह मिलेगा, सांझ मिट जायेगा। डर मिटने का है, लेकिन क्या इसी कारण तुम प्लास्टिक का

फूल लिए घूमते रहोगे? जीवन में खतरा है। प्लास्टिक के लिए कोई खतरा नहीं है। वर्षों तक वैसा ही बना रहेगा। जब चाहे तब धूल झाड़ देना, वह फिर ताजा मालूम पड़ेगा।

असली फूल तो खिलते हैं और मिटते हैं। असली फूलों का मजा ही यही है, कि क्षण भर को जीवन और मृत्यु के बीच ऊपर उठते हैं। असली फूलों की असलियत यही है, कि क्षण भर को मृत्यु के ऊपर अतिक्रमण कर जाते हैं। क्षण भर को, चारों तरफ घिरी मृत्यु के बीच भी वे कमल की तरह ऊपर उठ आते हैं। क्षण भर को जीवन का उद्घोष होता है।

प्लास्टिक के फूल में यह उद्घोष कभी भी नहीं होता। वस्तुओं से प्रेम प्लास्टिक के फूलों से प्रेम है। जिसको असली फूल मिल गए, वह प्लास्टिक के फूलों को फेंक आता है कचरे में। उसे वस्तुओं को छोड़ना नहीं पड़ता, व्यक्तियों का प्रेम मिल जाए, वस्तुएं छूटना शुरू हो जाती हैं। वस्तुओं का प्रेम तो व्यक्तियों के प्रेम का सब्स्टीटयूट था।

व्यक्तियों को प्रेम करनेवाला व्यक्ति कृपण नहीं रह जाता। उसके जीवन में ऊब नहीं होती, पुलक होती है। एक उत्साह होता है। पैरों में एक लगन होती है। कण्ठ में एक छोटा सा गीत उठने लगता है।

ये पक्षियों को तुम गाते देखते हो, ये प्रेम के गीत हैं। आदमी के कंठ को क्या हो गया? आदमी क्यों कोयल जैसी धुन नहीं उठा पाता? आदमी क्यों पपीहा जैसा पुकार नहीं पाता? आदमी क्यों···? छोटे-छोटे पक्षी गा लेते हैं बिना कहीं सीखे, बिना किसी संगीत महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए, बिना किसी गुरु के चरणों में वर्षों सेवा किए। पक्षी गा लेता है। आदमी के गीत को क्या हो गया है?

आदमियों का गीत वस्तुओं में दबकर मर गया है। आदमियों के कंठ में वस्तुएं भरी है। गीत निकल नहीं पाता। व्यक्तियों से प्रेम होता है, कंठ के अवरोध टूट जाते हैं। एक झलक आती है, एक लगन पैदा होती है। जीवन अर्थपूर्ण मालूम होता है। जीवन से ऊब उठती है। और लगता है, जीवन का एक रस है।

लेकिन व्यक्तियों का प्रेम भी कभी पूर्ण प्रेम नहीं हो पाता—हो नहीं सकता, क्योंकि दो अहंकार कैसे मिट सकते हैं? दोनों की चेष्टा होती है कि दूसरा मिट जाये। प्रेमी चाहता है, कि प्रेयसी अहंकार टूट जाये और वह मेरे प्रति समर्पित

हो जाये।

सभी प्रेमी वही कह रहे हैं, जो कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'माम् एकम् शरणम् व्रज!' सब छोड़कर तू मेरी शरण में आ जा।

कृष्ण ने कहा था, वह तो सार्थक है। क्योंकि वहाँ एक निरहंकारी था। वहां एक शून्यवत—महाशून्य था। तो कृष्ण ने कहा, सब छोड़कर मेरी शरण आ जा। इसमें अड़चन नहीं है क्योंकि कृष्ण महाशून्य है। अर्जुन डूब सकता है।

लेकिन दो प्रेमी भी यही कह रहे है, मामेकं शरण व्रज। पति पत्नी से कह रहा है 'आ, मेरी शरण।' पत्नी कह रही है, तुम्हीं आ जाओ। लाख चेष्टाएं चलती है। छुपी, प्रकट, अप्रकट, जाने में अनजाने में कि दूसरा झुक जाये और मिट जाये। इसलिए प्रेम एक संघर्ष हो जाता है। व्यक्तियों से प्रेम एक संघर्ष हो जाता है।

इसलिए तुम कृपण आदमी के जीवन में थोड़ी शान्ति पाओगे। लेकिन प्रेमी आदमी के जीवन में तुम्हें शांति न मिलेगी। पुलक तो मिलेगी, पर पुलक के पीछे अशांति छिपी होगी। और एक संघर्ष दिखाई पड़ेगा सतत। कौन मिटे? कोई मिटना नहीं चाहता। कोई मिटने की तैयारी में नहीं है। और समर्पण के बिना प्रेम न होगा पूरा। बिना मिटे वह परम अनुभूति न होगी।

और मिटे कोई कैसे? पति पत्नी के लिए मिटे, पत्नी पति के लिए मिटे? बहुत चेष्टाएं समाज ने कर लीं। लाख समजाया है स्त्रियों को, कि पति परमात्मा है। पतियों ने ही समझाया है। पुरुषों ने ही समझाया है कि तुम दासी हो। ये लिखती भी हैं पत्र में, कि तुम्हारी दासी; लेकिन पत्र में यह भाव कहीं नहीं होता। नीचे दस्तखत में होता है सिर्फ। पति को वे कहती भी हैं तुम स्वामी हो। लेकिन उनके व्यवहार से कहीं दिखाई नहीं पड़ता। औपचारिकता दिखाई पड़ती है।

पुरुष की चेष्टा रही कि स्त्री झुक जाये, स्त्री की चेष्टा रही कि पुरुष झुक जाये। पुरुष ने आक्रमण के उपाय किए हैं। स्त्री ने ज्यादा सूक्ष्म उपाय किए हैं। वे आक्रमण के नहीं हैं। ज्यादा गहन है। पुरुष सीधा ही सिर पकड़कर झुकाना चाहता है। स्त्री पैर पकड़कर झुकाना चाहती है। लेकिन झुकाना चाहती है।

और दोनों में आश्वस्त तब तक कोई भी नहीं होता, जब तक उसे पक्का

भरोसा न आ जाये कि दूसरे को झुका लिया गया है। खतरा यह है, कि अगर दूसरा सच में ही झुक जाये, तो दूसरा वस्तु जैसा हो जाता है। उसमें से व्यक्ति खो आता है।

इसलिए अगर पत्नी तुममें बिलकुल समर्पण कर दे, तो उसमें तुम्हारा रस चला जाएगा इसलिए तो पत्नियों में रस चला जाता है। अगर पत्नी बिलकुल ही झुक जाये, सच में ही झुक जाए जैसा तुम चाहते थे, तो वह वस्तु बन जाती है।

इसलिए हिंदुओं ने कहा कि पत्नी संपत्ति है। झुका लिया होगा उन्होंने। जिन्होंने यह लिखा है, उनका यह अनुभव होगा, कि पत्नी अगर झुक जाये, तो संपत्ति हो जाये। तब यह गाय, बैल की तरह है। बांधो, हटाओ, जो करना है; करो। आज्ञा दो, वह मानती हैं। और जब मर जाये, तब तुम दूसरी पत्नी ले आओ। परिपूरक हो सकता है उसका स्थान भरा जा सकता है। वह कार हो गई मकान हो गई, लेकिन स्त्री न रही। उसका व्यक्ति चला गया।

अब यह बड़ी दुविधा है। अगर न झुके, तो कलह है। लेकिन जब तक नहीं झुकती तब तक आकर्षण है। क्योंकि वह व्यक्ति है, आत्मा है, आत्मवान है; अपना बल है। उसका अपना निजी व्यक्तित्व है। जैसे ही झुकती है, वैसे ही शांति तो हो जाती है, लेकिन मन में दूसरी स्त्रियों का आकर्षण उठने लगता है। और जो स्त्री जितनी ही कठिनाई पैदा करती है झुकने में, उतनी ही चुनौती मालूम पड़ती हैं।

ऐसा ही पुरुष के संबंध में सच है। अगर पुरुष बिलकुल झुक जाये, स्त्री को वह पुरुष ही नहीं मालूम पड़ता। उसकी कोई स्थिति न रही। अगर न झुके तो झुकाने का संघर्ष चलता है। क्योंकि जब तक झुक न जाये तब तक उसे भरोसा नहीं आता कि मैं जीत गई। तो एक विजय का संघर्ष है व्यक्तियों के साथ, झुकने से पूरा नहीं होता क्योंकि झुकने में व्यक्ति वस्तु हो जाता है। बात ही खतम हो गई। और झुकना न हो तो संघर्ष चलता है, समर्पण नहीं हो पाता।

लेकिन जो व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करता है उसकी वस्तुओं के प्रति उपेक्षा हो जाती है। यह बहुत बड़ी घटना है। वह परिग्रही नहीं होता। और परमात्मा के प्रति उसकी तटस्थता हो जाती है।

तटस्थता का अर्थ है, वह परमात्मा के प्रति खुला होता है। निर्णय नहीं लिया

उसने अभी, कि परमात्मा है या नहीं, लेकिन खुला है। जिसको पश्चिम में एगनोस्टिक कहते हैं—अज्ञेयवादी, अनिर्णित। उसका निर्णय मुक्त है। वह खड़ा है। वह कहता है कि हो भी सकता है, न भी हो। खोज से पता चलेगा। जाऊंगा, पहचानूंगा जब समय होगा। यह जरा जरा बारीक बिंदु है, इसे ठीक समझना।

व्यक्तियों के साथ प्रेम में दो स्थितियां बन रहीं है। एक स्थिति है कि अगर व्यक्ति न झुके तो संघर्ष। अगर व्यक्ति झुक जाये, तो वस्तु हो जाता है। दोनों ही विकल्प चुनने योग्य नहीं हैं। दो घटनाएं होंगी। इसलिए व्यक्तियों को प्रेम करने वाले लोगों के जीवन में दो घटनाएं घटेंगी।

जवान व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करेगा। बूढ़े होते-होते उसमें दो घटनाओं में से एक घट गई होगी। या तो उसने व्यक्तियों से हारकर वस्तुओं से प्रेम शुरू कर दिया होगा। और या व्यक्तियों में जो थोड़ा सा रस पाया, उसकी समझ के आधार पर उसने परमात्मा की खोज शुरू कर दी होगी। या तो वह व्यक्तियों के ऊपर बैठकर महा-व्यक्ति को, समष्टि को प्रेम करने लगेगा। और या नीचे गिरकर व वस्तुओं को प्रेम करने लगेगा।

ये दो घटनायें इसलिए हैं, क्योंकि व्यक्तियों के प्रेम में दो विकल्प सदा मौजूद हैं। व्यक्तियों के प्रेम में रस भी मिलता है। और व्यक्तियों के प्रेम में संघर्ष भी मिलता है। दुख भी मिलता है और सुख भी मिलता है। व्यक्तियों का प्रेम दोहरा है। प्रेमी सुख भी देते हैं। तुम सभी जानते हो। अगर कभी किसी को प्रेम किया है, तो उससे दोनों चीजें मिलती हैं।

अब यह तुम पर निर्भर है कि तुमने व्यक्ति के द्वारा पाये गये और अगर दुख पर बहुत ध्यान दिया, तो धीरे-धीरे तुम वस्तुओं के प्रेम में गिर जाओगे। और अगर व्यक्तियों के द्वारा मिले सुख पर ध्यान दिया, तो तुम धीरे-धीरे महा-व्यक्ति की तलाश में निकल जाओगे। यहीं गुरु की जरूरत शुरू होती है।

कृपण के लिए तो गुरु किसी काम का नहीं है। कृपण तो गुरु से—डरता है। क्योंकि गुरु के प्रति समर्पित करना होगा, और यही तो कृपण का भय है। वह समर्पण कर नहीं सकता। इसलिए कृपण अगर गुरु के पास भी आता है, तो खुद को समर्पित नहीं करता, एक आम ले आता है। एक-दो केले ले आता है। यह तरकीब है बचने की। वह कह रहा है, लो महाराज, मुझे छोड़ो। इतना काफी है।

गुरु के पास केला लेकर आ रहे हो, कि आम लेकर चले आ रहे हो! कुछ तो सोचो। लाते हो तो अपने को लाओ। अन्यथा मत आओ। उससे कम में न चलेगा। उससे कम में जो गुरु राज़ी हैं, वे तुम्हारे जैसे ही हैं। वे गुरु नहीं हैं। वे भी तीसरे ही दर्जे के लोग हैं, जो वस्तुओं के प्रेम में पड़े हैं।

गुरु तुम्हें चाहता है। उससे कम काम नहीं चलेगा। अपना सिर ही लेकर आओ। कबीर ने कहा है कि जिसकी हिम्मत हो आ जाये; सिर रखे और ले जाये सब। लेकिन वह सिर रखना शर्त है।

गुरु एक मृत्यु है क्योंकि गुरु एक पुनर्जीवन भी है। मृत्यु के बाद ही पुनर्जीवन होगा। गुरु एक मृत्यु है क्योंकि गुरु जन्म भी है। अब केले का क्या कसूर है? केले ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? इसको तुम काहे को चढ़ा रहे हो? आदमी सदा से चढ़ता आया है दूसरी चीजें। कभी पशु चढ़ाता रहा है, कभी फल चढ़ाता रहा, कभी फूल चढ़ाता रहा। यह सिर्फ अपने को चढ़ाने से बचने की व्यवस्था है।

फिर आदमी ने कई तरकीबें निकाल लीं। नारियल चढ़ाता है। क्योंकि वह आदमी के सिर जैसा लगता है। वह सब्स्टीट्यूट है, परिपूरक। उसमें आंखें भी हैं, दाढ़ी है, मूंछ भी है, सब है। इसलिए तो हिंदी में उसको खोपड़ी कहते हैं—खोपड़ी! उसको आदमी चढ़ाता है जाकर मंदिर से। अपनी खोपड़ी ले आओ।

आदमी सिंदूर लगाता है। वह खून का प्रतीक है। अपना खून दो सिंदूर लगाने से क्या होगा? आदमी प्रतीक खोजता है, अपने को बचाता है।

जो इन प्रतीकों का सम्मान कर रहा है, वह भी तुम्हारे ही जात का हिस्सा है। वह तीसरे दर्जे का प्रेमी है। गुरु और चेला एक ही नाव में सवार हैं। और तुम दोनों डूबोगे: 'आप डूबते पांडे ले डूबे जजमान।' वे डूब ही रहे थे गुरुजी, तुम चढ़ गये नाव पर!

दूसरे कोटि का व्यक्ति, जो प्रेम करता है व्यक्तियों से, उसके जीवन में गुरु की संभावना शुरू होती है। काश, उसे गुरु मिल जाये! अन्यथा डर है कि वह तीसरे प्रेम में नीचे गिर जाएगा। अभी मौका था, कि वह पहले प्रेम की तरफ ऊपर उठ जाये। गुरु उसे सिखाएगा कि यह जो कलह थी, यह कलह प्रेम के कारण न थी। यह कलह अहंकार के कारण थी। प्रेम में जो तुम्हें दुख मिला प्रेयसी से, प्रेमी से जो तुम्हें पीड़ा मिली वह पीड़ा प्रेम के कारण न थी। यह

कलह अहंकार के कारण थी। प्रेम में जो तुम्हें दुख मिला प्रेयसी से, प्रेमी से जो तुम्हें पीड़ा मिली, वह पीड़ा प्रेम के कारण नहीं मिली, वह तुम्हारे अहंकार के कारण मिली।

प्रेम से तो सुख ही मिला। इतने अहंकार के होते हुए भी थोड़ा सा सुख मिला, यह चमत्कार है। लेकिन प्रेम के कारण कभी दुनिया में कोई दुख किसी को मिला नहीं। अगर तुमने समझा, प्रेम के कारण दुख मिला, तो फिर तुम वस्तुओं के प्रेम में लग जाओगे। क्योकि वहां फिर कोई दुख नहीं है।

लेकिन अगर तुम्हें यह समझ में आ गया, कि दुख मिला अहंकार के कारण। और अहंकार कैसे समर्पित करोगे दूसरे अहंकार को? दूसरा अहंकार बाधा देता है समर्पण में। क्योंकि दूसरा अहंकार मांग करता है, समर्पित करो। सिर्फ परमात्मा मांग नहीं करता समर्पण की।

जहां मांग नहीं है, वहां समर्पण आसान है।

प्रेम से थोड़ा-सा सुख मिला; अगर तुम पूरा समर्पण कर सको तो अनंत सुख की वर्षा हो जाये। सुख के मेघ कभी घिर आए—घिरे ही हैं। तुम्हारा हृदय थोड़ा खाली हो अहंकार से, कि वर्षा हो जाये।

परमात्मा की तरफ वही व्यक्ति जाता है, जिसने प्रेम में सुख पहचाना। और यह भी पहचाना कि बाधा थी मेरे कारण, अहंकार के कारण। अब मैं वह तलाश करूंगा उस बिंदू की, जहां मैं अपने अहंकार को छोड़ दूं व्यक्तियों के साथ कैसे छोड़ा जा सकता है? वे तुम्हारे जैसे ही हैं। वे उसी तल पर खड़े हैं, जहां तुम खड़े हो।

कोई चाहिए विराट्, कोई चाहिए इतना विराट, कि उसके पैरों तक तुम्हारा सिर पहुंचे। उतना भी पहुंच जाये तो बड़ी यात्रा। कोई चाहिए शून्य की भांति, जो मांग न करे, ताकि तुम्हें चुपचाप करने की सुविधा मिल जाये। जो कहे ना कि 'झुको। क्योंकि जब भी कोई कहता है झुको, तभी तुम्हारा अहंकार बांधा डालने लगता है। वह कहता है, मत झुको।

जब कोई कहता है झुको, तो अहंकार में अकड़ आती है। वह कहता है, क्यों झुकें? यह झुकाने वाला कौन है? मैं क्यों किसी के सामने झुकूं? अहंकार की मजबूती बढ़ती है। प्रतिशोध बढ़ता है। परमात्मा तुमसे नहीं कहता कि झुको। वह महाशून्य है, वह आकाश है। तुम झुक जाओ, तुम्हारी मर्जी। और अहंकार

को झुकने में सुविधा होती है वहां, जहां कोई झुकने वाला नहीं होता।

तीसरे तरह का प्रेम है, परमात्मा की तरफ प्रेम। वह प्रेम पूर्ण प्रेम है। क्योंकि वहां तुम झुक जाते हो। कोई झुकानेवाला पहले से ही नहीं है। परमात्मा है थोड़े ही! होता, तो आदमी कभी भी न झुक पाता। परमात्मा नहीं होने का नाम है। परमात्मा की कोई मौजूदगी थोड़े ही है। अगर मौजूदगी होती, तो अड़चन पड़ती। परमात्मा एक गैर-मौजूदगी है। परमात्मा की उपस्थिति नहीं है, परमात्मा परम-अनुपस्थिति है—एबसोल्यूट एबसेन्स।

इसलिए तो तुम उसे खोज नहीं पाते। लाख भागो, दौड़ो, हिमालय पर जाओ, कैलाश चढ़ो, मानसरोवर में खोजो, कहीं नहीं मिलता। परमात्मा एक महान गैर मौजूदगी है, अनुपस्थिति है। वह ऐसे है, जैसे न हो। उसका होना, न होने जैसा है। उसका होना शून्यवत् है। वह आकाश जैसा है।

इसीलिए कबीर आकाश शब्द का प्रयोग बार-बार करते हैं। वह परमात्मा का स्वभाव है। शून्य उसका स्वभाव है। वह तुम्हें झुकाता नहीं। तुम झुक रहे होओगे, तो वहां कोई मुस्कुराता नहीं है। क्योंकि उतनी मुस्कुराहट भी तुम्हें रोक देगी। तुम झुक रहे होओगे तो कोई तुम्हारी पीठ थपथपाता नहीं। क्योंकि उतने में ही अकड़ वापस लौट आयेगी, कि अरे! यहां भी कोई मौजूद है। तुम्हारी अकड़ वापस आ जायेगी। संघर्ष शुरू हो जायेगा।

परमात्मा से लड़ने का उपाय नहीं है। क्योंकि वह इतना छिपा हुआ है कि तुम कैसे लड़ोगे? परमात्मा को पाने का भी उपाय नहीं है। सिर्फ अपने को खोने का उपाय है। जो खो देते हैं, वे पा लेते हैं। जो पाने निकलते हैं, वे कभी नहीं खोज पाते।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें ईश्वर खोजना है। मैं उनसे कहता हूं कि तुम खोजो। बाकी तुम्हें मिलेगा नहीं। वे कहते हैं क्यों? हमारी क्या गलती?

सवाल गलती का है हीं नहीं। खोजने वाले को कभी मिलता ही नहीं। जो खोने को तैयार है, उसको मिलता है। खोना ही उसे पाने का ढंग है। क्योंकि वह खुद खोया हुआ है। तुम भी वैसे ही हो जाओ, तत्क्षण मेल हो जाता है। तुम अनुपस्थित हो जाओ। तुम्हारा अहंकार चला जाये। तुम ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं, तत्क्षण मेल हो गया। भीतर का आकाश बाहर के आकाश से मिल

गया।

और तब प्रेम का परम प्रकाश प्रकट होता है। तब प्रेम का गौरीशंकर उठता है। प्रेम, मोक्ष है। क्योंकि प्रेम तुम्हारी तुमसे ही मुक्ति है। प्रेम परम प्रकाश है। क्योंकि तुम्हारे अहंकार के अतिरिक्त और कोई अंधकार नहीं है। सब तरफ सूरज उगा है। एक तुम आंख बंद किए बैठे हो। आंख खुली—प्रकाश ही प्रकाश।

ऐसी जिसे प्रतीति होने लगे—ऐसी प्रतीति कब होती है? जब तुमने व्यक्तियों का प्रेम जाना हो और उस प्रेम की विफलता भी। जब तुमने व्यक्तियों के प्रेम का सुख जाना हो और उसकी पीड़ा भी। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, प्रेम करो। क्योंकि उस प्रेम के बिना तुम परमात्मा की तरफ जाओगे कैसे? वही प्रेम तुम्हें रस लगाएगा परमात्मा की तरफ जाने का। वही प्रेम तुम्हें व्यक्तियों से मुक्त होने की सुविधा भी देगा। प्रेम बड़ी अनूठी कला है।

लेकिन वस्तुओं में प्रेम मत करना, अन्यथा तुम अटके रह जाओगे। व्यक्तियों से प्रेम करना। क्योंकि व्यक्तियों का प्रेम तुम्हें तृप्ति होने भी न देगा। यह खूबी है। व्यक्तियों का प्रेम तुम्हारे कण्ठ को भिगाएगा और प्यास को बुझाएगा भी नहीं। बल्कि प्यास और प्रज्जवलित होकर जलने लगेगी।

व्यक्तियों का प्रेम एक ऐसी दुविधा देगा, ऐसे दोराहों पर खड़ा कर देगा, जहां से एक रास्ता तो वस्तुओं के प्रेम की तरफ जाता है, जहां परिग्रही गिरता है और भटकता है; वहीं नर्क है। और जहां से दूसरा रास्ता स्वर्ग में जाता है, परमात्मा की तरफ जाता है।

तो मैं निरन्तर अपने साधकों को कहता हूं कि एक बात ध्यान रखना, प्रार्थना शुरू नहीं होगी, जब तक तुम्हारा प्रेम पक न जाये; जब तक तुम प्रेम को न जान लो। और प्रेम को जानने का अर्थ है, प्रेम का नर्क भी जानना और प्रेम का स्वर्ग भी। प्रेम का नर्क तुम्हें व्यक्तियों के प्रेम से ऊपर उठायेगा और प्रेम का स्वर्ग तुम्हें परमात्मा के प्रेम में ले जाएगा।

अब हम कबीर के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें।

'प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरै नाही।'

जब व्यक्तियों के प्रेम के ऊपर कोई उठाता है और परमात्मा का प्रेम जगता है, 'तब प्रीति लागी तुम नाम की।' नाम का ही पता है, अभी उसका तो

कुछ पता नहीं। अभी उस प्रेमी को देखा भी नहीं है। अभी वह प्रेमी मिल जाये तो पहचान भी न सकेंगे। प्रत्यभिज्ञा भी न होगी। अभी तो उस प्रेमी की खबर मिली है। एक हवा का झोंका आया है। 'प्रीति लागी तुम नाम की।' अभी तो नाम सुना है। एक भनक पड़ी है।

यह कैसे लगती है नाम की प्रीति? क्योंकि जिसे देखा नहीं, जिसे जाना नहीं, जिसे पहचाना नहीं, जिसे कभी आलिंगन नहीं किया, जिसका कभी स्पर्श नहीं हुआ, उसकी प्रीति कैसे लगती है?

व्यक्तियों के जगत में, नंबर दो के प्रेम में तो जिस स्त्री को तुमने देखा हो, पहचाना हो, स्पर्श किया हो, उसकी ही प्रीति जाती है। कोई अपरिचित स्त्री, जो कहीं तिब्बत में हो, जिसका कुछ पता ही नहीं, न जिसकी तस्वीर देखी हो, न कभी जिसे फिल्म में देखा हो, उससे तुम्हारा प्रेम होता है कैसे होगा? नाम भी कोई बता दे, तो भी क्या नाम सुनकर प्रेम हो जाएगा।

फिर परमात्मा का प्रेम कैसे लगाता है? प्रीति लागी तुम नाम की—यह घटना कैसे घटती है? यह अनघट घटना कैसे घटती है? इसका राज है। यह गुरु के कारण घटती है।

कबीर के गुरु थे रामानन्द। कबीर उनको नाचते देखते। तंबूरा बजाता है, रामानंद नाचते हैं। कबीर उनके पास बैठते हैं। उनसे बहते आनंद के झरने का स्पर्श होता है। उनकी मस्ती, उनकी समाधिस्थ आनन्द की दशा, सोते-जागते रामानन्द को सब रूपों में देखते हैं। उस रूप में धीरे-धीरे अरूप की भनक पड़ने लगती है। रामानन्द के पास होते-होते राम के पास होने लगते। क्योंकि रामानंद यानी राम को पाकर मिला आनन्द।

यह नाम बड़ा प्यारा है कबीर के गुरु का—रामानन्द। जिसको राम मिल गया और जो उसके आनन्द से भरा है। राम का तो पता नहीं है कबीर को, लेकिन रामानन्द से घटे आनन्द का पता है। वह घट रहा है। वह प्रतिपल बरस रहा है। वहां मेघ गरज ही रहे हैं। वह प्रतिपल बरस रहा है। वहां मेघ गरज ही रहे हैं। 'चहुं दिस दमके दामिनी।' वहां तो बिजली चमक रही है। वह रामानन्द के पास रोग लगता है। रामानन्द संक्रामक बीमारी हो जाते है।

जैसे बीमारियां पकड़ती हैं, वैसे स्वास्थ्य भी पकड़ता है। और जैसे बीमारियां पकड़ती हैं और बीमारियों के कीटाणु होते हैं, वैसे ही स्वास्थ्य के भी

कीटाणु होते हैं और वैसे ही परमात्मा की धुन भी पकड़ती है। क्योंकि वह परम स्वास्थ्य है।

रामानन्द के पास एक नई पुलक उठने लगी। एक नई पुकार! कोई दूर से बुलाता है। पहचाना नहीं, जाना नहीं, लेकिन हृदय आंदोलित होता है। 'प्रीति लागी तुम नाम की :' अभी तुम्हारा कुछ पता नहीं। अभी सिर्फ नाम सुना है। वह भी रामानन्द से सुना है। लेकिन रामानन्द में ऐसा घट रहा है, कि भरोसा आ रहा है कि वह नाम जरूर किसी का होगा। उसकी खोज करनी पड़ेगी।

बुद्ध से कोई पूछता कि क्या आपको सुनकर ज्ञान हो जायेगा? क्या आपको समझकर जान जायेगा? बुद्ध कहते, नहीं। बुद्धों को सुनकर तो केवल प्यास जागती है। ज्ञान तो परमात्मा से मिलने से होगा, सत्य के मिलने से होगा। बुद्धों के पास तो पीड़ा जगती है, विरह उठता है। हृदय रुदन से भर जाता है। आंखों में आंसू झलक आते हैं। कोई अनजानी पुकार, कोई आवाज, जिसकी दिशा भी पहचानी नहीं, जहां कभी पैर भी नहीं चले, ऐसा कोई रास्ता, ऐसा कोई मार्ग बुलाने लगता है। और ऐसी उठती है पुकार—पल बिसरे नाहीं। कि एक क्षण भी भूलती नहीं।

'प्रीति लागी तुम नाम की पल बिसरे नाहीं,
नजर करो अब मिहर की, मोहे मिलो गुसाईं।'

अब बहुत हो चुका। अब थोड़ी कृपा इस तरफ भी हो जाये। नजर करो मेहर की।' अनुकंपा मुझ पर भी हो जाये। अब मिलो गुसाईं। अब बहुत विरह हो गया।

जिस दिन पहली दफा विरह का भाव उठता है—विरह के भाव का अर्थ है, लगता है कि परमात्मा को पाये बिना कुछ भी सार्थक नहीं लगता है। सब कुछ दांव पर लगा देने जैसा है, लेकिन परमात्मा को पाना है। लगता है अपने को खोने को तैयार हूं लेकिन तुम्हें अब और खोये रहने को तैयार नहीं। सब चुकाने को राजी हूं, लेकिन तुमसे मिलन होना ही चाहिए, जिस दिन सारा जीवन-मरण दांव पर लगता है, जिस दिन हम जीते हैं तो उसके लिए, और मरते हैं तो उसके लिए, उस दिन फिर पल भर भी उसकी याद नहीं भूलती।

सोते जागते भी प्रेमी प्रेयसी की याद करता है। गालिब का कोई पद है, कि रात आंख नहीं झपकता, क्योंकि पता नहीं उसी क्षण तुम्हारा आना हो जाये। पता नहीं मैं सोया रहूं तुम द्वार पर दस्तक दो और लौट जाओ।

बड़ी बेचैनी की दशा हो जाती है प्रेमी की। पत्ते लड़खड़ाते हैं, लगता है, प्रेयसी आई कि प्रेमी आया। हवा का झोंका गुजरता है वृक्षों से, प्रेमी द्वार खोलकर देखता है, शायद आना हो गया। राहगीर गुजरते हैं, पदचाप सुनाई पड़ती है, प्रेमी भागा द्वार के पास पहुंच जाता है कि शायद आ गये।

'प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरै नाही।'

एक क्षण को भी भूलती नहीं याद। और तभी याद, है। जो भूल भूल जाये, जिसे सम्हालकर लाना पड़े, वह भी कोई याद है?

कबीर कहते हैं, जैसे पनघट से कोई पानी भरकर चलती है नारी, गपशप करती, गीत गुनगुनाती, सखियों से बात करती हंसी-ठिठोली होती, लेकिन उसकी याद तो सिर पर रखे घड़े पर लगी रहती। यह सब चलता है बाहर-बाहर। वह हाथ से भी नहीं सम्हालती घड़े को। घड़ा सम्हला रहता है। याद सम्हाले रहती है। बात चलती, चर्चा होती, हंसती, गीत गाती, हजार गपशप होती, लेकिन यह सब बाहर-बाहर का व्यापार होता है। केंद्र पर एक सुरति बनी रहती है, एक स्मृति बनी रहती है घड़े को सम्हालने की।

जब विरह की अग्नि पहली दफा उठती है, तो गुरु से उठती है। गुरु के बिना नहीं उठ सकती। जब तक तुमने ऐसा आदमी न देखा हो, जिसके जीवन से मिलने की सुवास उठ रही हो, जिसके भीतर तुम्हें अहसास होने लगे कि गुसाईं का आना हो गया; जिसके पदचापों में तुम्हें उस अज्ञात परमात्मा की धुन सुनाई पड़े, जिसके पदचिन्हों में उसके पदचिन्ह न हों, परमात्मा के भी पदचिन्ह बचा कर रखे हैं, क्योंकि वे सिर्फ गौतम सिद्धार्थ नाम के आदमी के पदचिन्ह नहीं हैं। अन्यथा कौन फिक्र करता है? कितने लोग इस पृथ्वी पर चलते हैं और जाते हैं। उन पैरों में जो लोग निकट थे उन्होंने किसी और पैर को भी देखा है। उस बुद्ध की मूर्ति में सिर्फ शुद्धोधन के बेटे गौतम सिद्धार्थ की प्रतिमा को हमने निर्मित नहीं किया है; उस प्रतिमा में कुछ अप्रितम है जो किसी प्रतिमा में बांधा नहीं जा सकता; कोई मूर्ति जिसे सम्हाल नहीं सकती, वह अमूर्त झलका है। उस बूंद में हमने सागर को देखा है। उस पत्ते में हमें पूरे वृक्ष की खबर मिली है। उस मुट्ठी में हमने सारे आकाश को देखा है। हम किसी को कह भी नहीं सकते, समझा भी नहीं सकते।

इसलिए शिष्य की बड़ी दुविधा है। शिष्य अपने गुरु के संबंध में किसी को कुछ नहीं समझा सकता। क्योंकि जो उसने देखा है, वह उसने देखा है। समझाने का कोई उपाय नहीं है। प्रमाण देने का कोई मार्ग नहीं है।

कौन प्रेमी अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में समझा पाता है? तुम लाख कहो कि तुम्हारी प्रेयसी विश्व सुन्दरी होने के योग्य है, कोई सुनता नहीं। विश्वसुन्दरियों के चित्र छापते हैं, तुम देखते हो, तुम ऐसा फेंक देते हो, कि कुछ नहीं; मेरी पत्नी के मुकाबिले क्या? या मेरी प्रेयसी के मुकाबिले क्या? और पड़ोसी विचार में पड़ते हैं, कि तुम इस स्त्री के पीछे दीवाने क्यों हो? क्या देख लिया तुमने? दिमाग खराब हो गया? माथा बिगड़ गया है? सम्मोहित हो? उस स्त्री ने कुछ खिला-पिला दिया? कोई ताबीज बांध दिया? मामला क्या है! इसमें हमको तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

शिष्य भी गुरु के सम्बन्ध में कुछ नहीं समझा पाता। कोई प्रमाण नहीं दे सकता। कुछ अप्रमाण उसे घटा है। कुछ बिना प्रमाण के घटा है। कुछ देखा है, बस देखा है। उस देखने में वह मोहित हुआ है। परमात्मा के प्रति विरह जगता है, जब तुम गुरु के पास आते हो।

जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा की तरफ विरह बढ़ता है—यह सूत्र है।

यह सार समझ लेना। जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा के प्रति विरह की अग्नि जलती है। धीरे-धीरे गुरु तुम्हें तड़फा देता है। गुरु तुमसे सब छीन लेता है, जो कल तुम्हारा सुख था। सब छीन लेता है, जो कल तक तुम्हारा प्रेम था। सब छीन लेता है। तुम्हारी नींद छीन लेता है। जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा की विरह जगती है। एक अनूठी प्यास कण्ठ को पकड़ लेती है। प्राण जकड़ जाते हैं।

अब तुम तड़फते हो, जैसे मछली तड़फती है। पानी से निकाल ली किसी ने मछली को और डाल दी रेत पर; और तड़फती है। ऐसा गुरु तुम्हें पहली दफा तुम्हें तुम्हारे गलत प्रेम से निकाल कर ठीक प्रेम की रेत पर डाल देता है। तुम तड़फते हो। पहली दफा विरह की अग्नि पैदा होती है।

'प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मिहर की, मोहे मिलो गुसाईं॥

विरह सतावै मोहे को जिय तड़फे मेरा,
तुम देखने की चाव है, प्रभु मिला सबेरा॥'

'विरह सतावे मोहि को, जिव तड़फे मेरा—'

प्राण तड़फते हैं तुम्हारे लिए। श्वास चलती है तुम्हारे लिए। पलभर को भी विश्राम नहीं है। याद चुभती है कांटों की तरह; जैसे हृदय में कांटा लगा हो। एक मीठी पीड़ा जो घेर लेती है; जिससे बाहर होने का कोई उपाय नहीं सूझता। क्या करे विरह का मारा हुआ? रोता है, गाता है। उसके रोने में तुम गीत पाओगे, उसके गीत में तुम रोना पाओगे। हंसता है, उसके हसने में तुम आंसू पाओगे। आंसू टपकते हैं। उसके आंसू में तुम मुस्कुराहट पाओगे।

क्योंकि एक तरह से तो वह बड़ा प्रसन्न है कि विरह पैदा हो गया। क्योंकि आधा मिलन हो गया। विरह यानी आधा मिलन। सौभाग्य है कि विरह जग गया। कम से कम यात्रा शुरू तो हो गई। राह पर तो आ गये। मन्दिर कितनी ही दूर हो, लेकिन शिखर दिखाई पड़ने लगा। अभी मन्दिर की प्रतिमा भी दूर हो, लेकिन शिखर पड़ने लगा। अभी मन्दिर की प्रतिमा नहीं दिखी, लेकिन आकाश में चमकता हुआ स्वर्णशिखर दिखाई पड़ने लगा। आशा बंधती है, भरोसा आता है। भक्त दौड़ने लगता है।

'विरह सतावे मोहि को, जिव तड़पे मोरा।
तुम देखन की चाव है—

बस, एक ही चाह बची। सब चाहें एक चाह में गिर गई। जैसे सभी नदियां एक हो सागर में गिर जायें। वह है, तुम देखन की चाव।

'...प्रभु मिला सबेरा।'

सुबह हो गई। अब अंधेरा नहीं है। सब दिखाई पड़ता है। बस अब एक ही चाह है कि उस रोशनी में तुम भी दिखाई पड़ जाओ।

यह ध्यान की अवस्था है। अब रोशनी तो हो जाती है, लेकिन समाधि नहीं फलती। जब प्रकाश तो हो जाता है, सुबह तो हो गई, लेकिन अभी सूरज नहीं निकला है। रात जा चुकी, अंधेरा अब नहीं है, सुबह हो गई—सबेरा; लेकिन सूरज अभी नहीं निकला है। अभी सूरज के दर्शन नहीं हुए।

वह जो मध्यकाल है, रात्रि के जाने और सूरज के आने के बीच में जो संध्याकाल है, उसको ही हिंदुओं ने अपनी प्रार्थना का समय बनाया। क्योंकि वही ध्यान

है। वही ध्यान का प्रतीक है। इसलिए हिंदू प्रार्थना को संध्या कहते हैं। संध्या का अर्थ हैं, सुबह। रात गई, दिन अभी आया नहीं। वह जो मध्यकाल है। संध्या का—सांझ। सूरज जा चुका, रात अभी आई नहीं। वह भी संध्या है। ध्यान, संध्या की अवस्था है। इसलिए हिंदुओं ने ध्यान का नाम ही संध्या रख लिया। ठीक किया। वह प्रतीक बिलकुल सही है। ध्यान की अवस्था में प्रकाश तो हो जाता है, लेकिन प्रभु का दर्शन नहीं होता। सूरज अभी निकला नहीं है।

कबीर कहते हैं—

'विरह सतावे मोहि को जिव तड़पे मेरा,
तुम देखन की चाव है प्रभु मिला सबेरा।

सुबह हो गई। अब तो दिखाई पड़ जाओ।

'नैना तरसे दरस को, पल पलक न लागे।
दर्दबंद दीवार का, निसि बासर जागे॥

अब आंखों में एक ही तड़फ, एक ही तरस है—'नैना तरसे दरस को।' तुम्हारे दर्शन हो जाय। तुम दिखाई पड़ जाओ। जन्मों-जन्मों से भूखी आंखें तृप्त हो जाये। ये जन्मों-जन्मों से तड़फी आंखें तुम से भर जायें। तुम्हें समा लें अपने भीतर।

'पल पलक न लागे—'

इस डर से पलक नहीं झपकता कि पता नहीं, इधर पलक झपके, उधर तुम आओ। अवसर चूक जाये। पलक झपकाने से ही डर लगता है। एक क्षण...कौन जाने वही क्षण मिलने का क्षण हो।

'दर्दबंद दीदार का...'

वह जो देखने के लिए दीवाना है, वह जो देखने के लिए पीड़ा से भरा है, 'निसि बासर जागे।' वह सोता ही नहीं। सोने की सुविधा उसे नहीं। वह जागता है—दिन भी और रात भी। कौन जाने कब उसका आगमन हो! कब उसका रथ रुक जाये आकर द्वार पर! कहीं ऐसा न हो, कि वह मुझे सोया हुआ पाये।

ध्यान की अवस्था सतत जागरण की अवस्था है। सतत चेष्टा है, कि जागा रहूं।

'जो अबके प्रीतम मिले, करूं निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।'

'जो अबके प्रीतम मिले...'

ये शब्द बड़े अनूठे हैं। इसका अर्थ...

कबीर कहते हैं, 'जो अब के प्रीतम मिलैं।' वे कहते है कि मिले तो तुम पहले भी होओगे। मेरे अनजाने मिले। मिलते तो तुम पहले भी रहे होओगे, क्योंकि तुम्हारे बिना जीवन कहां? बहे तो तुम पहले भी मेरी सांसों में होओगे, लेकिन मैं सोया था। आये तो बहुत बार तुम मेरे द्वार पर होओगे, क्योंकि कैसे तुम मुझे भूल सकते हो? मैं तुम्हारा ही हूं। कितना ही दूर भटक गया होऊं, तुमने छाया की तरह मेरा पीछा किया होगा। लेकिन मुझे तुम्हारी पहचान न थी। न मालूम कितने रूपों में तुम आए होओगे। मैंने रूप तो देखे, लेकिन तुम्हें न देख पाया। फूल में तुम हसे होओगे। मुझे दिखाई न पड़ा मैं अंधा था। वृक्ष में तुम खिले होओगे, मैं गाफिल था। मनुष्यों को आंखों से तुमने झांका होगा मेरी तरफ, लेकिन मैंने सिर्फ समझा कि मनुष्यों की आंखें हैं। इसलिए कबीर कहते हैं, जो अबके प्रीतम मिलैं।

वे यह नहीं कहते कि यह मिलन कोई पहली दफा होने वाला है। वे यह नहीं कहते कि यह मिलन नया है। हम हो ही नहीं सकते बिना परमात्मा के। हमारा होना वही है। जैसे मछली नहीं हो सकती बिना सागर के। पैदा होती सागर में जीती सागर में, मिटती सागर में, ऐसे हम परमात्मा के सागर में हैं। चेतना की मछली, परमात्मा का सागर। चेतना हो ही नहीं सकती परमात्मा के बिना। हम चेतन हैं।

तो यह तो नहीं कहते कबीर कि यह पहली दफा मिलना हो रहा है। वे कहते हैं कि मिलना तो बहुत बार हुआ होगा, लेकिन मैं बेहोशी के साया, मैं गाफिल, मैं नशे में धुत पड़ा रहा। तुम आये होओगे। क्षमा करो उन भूलों को।

'जो अब के प्रीतम मिले—'

लेकिन अब एक बात पक्की है, कि इस बार अगर मिलना हुआ, अगर अब तुम्हें पहचान पाया, कहीं भी किसी भी चांद तारे के पास तुम्हारी छाया दिख गई, तो पकड़ लूंगा। अब न छोड़ूंगा।

'...करूं निमिख न न्यारा।'

अब एक क्षण को भी तुमसे अलग न हो सकूंगा। अब मैं तुम्हें अलग न करूंगा। अब मैं तुम्हारी छाया बन जाऊंगा।

'अब कबीर गुरु पाइया'

और अब भरोसा है क्योंकि गुरु मिल गया। अब डर नहीं है। अब तुम कितने की छिपो, छिप न पाओगे। कितने अवगुंठन धरो, कितने ही घूंघट पहनो 'अब कबीर गुरु पाइया।' अब मैं अकेला नहीं हूं। अब कोई है, जो तुम्हें पहचानता है, और साथ है। और कोई है, जिसकी भलीभांति पहचान है और जिसे तुम धोखा नहीं दे सकते, और जिससे तुम छिप नहीं सकते।

'अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।'

अब तुम कितनी देर बचोगे? गुरु के मिलने में तुम मिल ही गये। करीब-करीब मिल गये। यात्रा पूरी होने के करीब है। अब कबीर गुरु पाइया मिला प्राण पियारा। अब प्राण-प्यारा मिल ही गया। समझो कि मिलन हो गया।

गुरु मिल गया कि परमात्मा का द्वार मिल गया। गुरु मिल गया कि गुरुद्वारा मिल गया; सहारा मिल गया। अब हाथ किसी ने सम्हाल लिया। अब तुम अंधेरे में नहीं भटक रहे हो। अब तुम यूं ही अंधेरे में नहीं टटोल रहे हो। कोई है जिसकी आंख खुली है। और जो परिपूर्ण रोशनी में जी रहा है।

'जो अबके प्रीतम मिले, करूं निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया मिला प्राण पियारा।'

गुरु को पा लिया, सार में परमात्मा को पा लिया। इसलिए तो गुरु की इतनी चर्चा इस देश में चलती रही है। जैसे गुरु के बिना कुछ भी न हो सकेगा। जैसे गुरु के बिना कोई उपाय नहीं है।

गुरु इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है इस देश में? जिन्होंने भी पाया, सदा गुरु के द्वार से पाया। गुरु की आंखों से झांक कर पाया। गुरु के हाथों से छू कर पाया गुरु के हृदय से धड़क कर पाया।

'जो अबके प्रीतम मिले, करूं निमिख न न्यारा
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।

□

अंधे हरि बिन को तेरा, कबन्सु कहत मेरा।
तजि कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि कहा भुलाना।।
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमिख माहि जर जाई।
जब लग मनहि विकारा, तब लग नहीं छूटे संसारा।।
जब मन निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई।।
जब पाप पुण्य भ्रम जारि, तब भयो प्रकाश मुरारी।
कहे कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।
मूले भरम भरे जिन कोई, राजा राम करे सो होई।।

4. अंधे हरि बिन को तेरा

19 मई, 1975, प्रात: 8

मैं यदि पूछूं तुमसे, कि संसार कहां है ? तुम दसों दिशाओं को बताओगे। लेकिन संसार वहां है नहीं। वहां तो परमात्मा है। तो शायद तुम भीतर बताओ, ग्यारहवीं दिशा में बताओ । वहां भी संसार नहीं हैं। वहां भी परमात्मा है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है ।

फिर संसार कहां है। बाहर और भीतर के मध्य। जिसे हम मन कहते हैं; सारा संसार वहीं है। मन न तो बाहर है, और मन न भीतर है। मन बाहर और भीतर के मध्य खड़ी दीवार है। और सारा संसार मन का विस्तार है।

जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, जो तुम्हारी कामना, तुम्हारी वासना चाहता है। तुम्हारी चाह में सब रंग जाता है। तुम्हारे राग में सब रंग जाता है। और तुम वही देख पाते हो, जो तुम्हारी भीतर की कामना तुम्हें दिखाती हैं। तुम्हारा देखना शुद्ध नहीं है। दृष्टि निर्मल नहीं है । विकार से भरी है।

विकार का इतना ही अर्थ, कि तुम दर्पण की तरह खाली नहीं हो कि वही दिख जाए, जो है। तुम्हें वही दिखाई पड़ता है जो तुम प्रक्षेप करते हो। कहीं सौंदर्य दिखाई पड़ता है। कहीं तुम्हें कुरूपता दिखाई पड़ती है। कहीं तुम्हें लाभ दिखाई पड़ता है। कहीं तुम्हें हानी दिखाई पड़ती है। ये सब तुम्हारी धारणाएं हैं। ये तुम्हारी वासनायें हैं।

शुद्ध सत्य सब तरफ मौजूद है—बाहर और भीतर ! पर मन सबको रंग डालता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में नौकर था। बूढ़ा आदमी; सत्तर साल उम्र ! लेकिन पुराना नौकर, इसलिए दफ्तर ने उसे जारी रखा। बहुत लोग थे दफ्तर में काम करने वाले। पुरुष थे, स्त्रियां थीं। और स्त्रियों के संबंध मे पुरुषों मे अक्सर मजाक चलता रहता है।

एक सुन्दरतम स्त्री थी दफ्तर में। सावन का महिना आया, तो उसने मुल्ला नसरुद्दीन को कहा कि मुल्ला साहब ! यहां और तो कोई दिखाई नहीं पड़ता

जिसे मैं राखी बांधूं। और मेरा कोई भाई नहीं है। बस, आप ही एक सरल मूर्ति दिखाई पड़ते हैं। तो परसों राखी का त्योहार आता है। मैं आपको राखी बांधूंगी। लेकिन ध्यान रहे, इक्कीस रुपये और एक साड़ी आपको देनी पड़ेगी।

नसरुद्दीन थोड़ा चिंतत हुआ। माथे पर चिंता की रेखा आई। तो शायद उस स्त्री ने सोचा कि इक्कीस रुपया और साड़ी महंगी मालूम पड़ती है। तो उसने कहा कि नहीं नहीं, उसकी फिक्र मत करिये। वह तो मैं मजाक कर रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, वह सवाल नहीं है। आप गलत समझीं। इक्कीस की जगह बयालिस रुपये ले लेना। एक साड़ी की जगह दो साड़ी ले लेना, लेकिन कम से कम रिश्ता तो मत बिगाड़ो !

भीतर मन है उसके अपने राग हैं, अपने रंग है, दूसरे को तो दिखाई नहीं पड़ते, तुम्हीं को दिखाई पड़ते हैं। तुम्हारा मन दूसरों को दिखाई भी कैसे पड़ सकता है ? तुम किस दुनिया में रहते हो वह किसी को भी पता नहीं चलता। तुम थोड़े होश से भरो, तो तुम्हीं को पता चलना शुरू होगा।

और तुम्हारा मन सारी चीजों को रंग डालता है। किसी को तुम कहते हो मेरा अपना। किसी को कहते हो पराया। किसी को मित्र, किसी को शत्रु। कौन है मित्र ? कौन है शत्रु ? जो तुम्हारी वासनाओं के अनुकूल पड़ जाये वह मित्र, जो तुम्हारी वासनाओं के प्रतिकूल पड़ जाये, वह शत्रु। कोई अच्छा लगता है, कोई बुरा लगता है। किसी के तुम पास होना चाहते हो। किसी से तुम दूर होना चाहते हो। यह सब तुम्हारे मन का खेल है।

चेखोव रूस का एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसने अपने संस्मरणों के आधार पर एक कहानी लिखी। उसके मित्र का लड़का कोई दस साल पहले घर से भाग गया। मित्र धनी था। लेकिन जैसे अक्सर धनी होते हैं, महा-कृपण था। और लड़के को बाप के पास रास न पड़ी। यो लड़का घर छोड़ कर भाग गया। एक ही लड़का था। जब भागा था तब तो बाप में अकड़ थी, लेकिन धीरे-धीरे अकड़ कम हुई। मौत करीब आने लगी। दस साल बीत गये। लड़के के लौटने के कोई आसार न मालूम पड़े।

खोजने वाले भेजे। थोड़ा झुका बाप। क्योंकि वही तो मालिक है सारी संपदा का। और मौत कभी भी घट सकती है। कोई पता न चलता था लेकिन एक दिन एक पत्र आया, कि लड़का बहुत मुशीबत में है और पास के ही शहर

में है । पिता को बुलाया है। और कहा, कि अगर आप आ जाये तो मैं आऊंगा। अपने से मेरी आने की हिंमत नहीं होती। शर्मिंदा मालूम अपराधी लगता हूं।

तो बाप गया शहर। एक शानदार होटल में ठहरा। लेकिन रात पाया, कि होटल के कमरे के बाहर कोई खांसता, खंखारता...तो दर खोलकर उस आदमी से कहा कि हट जाओ यहां से। सोने दोगे या नहीं? ले रात सर्द और बर्फ पड़ रही है। और वह आदमी जाने को राजी नहीं है। तो उसने धक्के देकर उसे बरामदे के बाहर कर दिया। फिर जाकर वह आराम सो गया।

सुबह होटल के बाहर मैदान में भीड़ लगी पाई। कोई मर गया है। तो भी गया देखने। कपड़े तो वही मालूम पड़ते हैं, जिस आदमी को रात बाहर निकाल दिया था। भीड़ में पास जाकर देखा, तो चेहरा [illegible] मालूम पड़ा। यह तो उसका लड़का है!

अपने ही लड़के को रात उसने बाहर निकाल दिया। मन को पता न [illegible] कि अपना नहीं है। मन को पता हो कि अपना है, तो अपना है सारा खेल मन का है क्षण भर पहले कोई मतलब न था। यह आदमी [illegible] था। भीड़ लगी थी। लेकिन क्षण भर बाद अब बाप छाती पीट कर रो [illegible] कि मेरा लड़का मर गया है। और अब यह पीड़ा जीवन भर रहेगी [illegible] ही मारा।

खेल सारा मन का है। अगर अभी सिद्ध हो जाये, कोई दूसरा आदमी आ जाये और कहे कि यह लड़का मेरा है, तुम्हारा नहीं तुम भूल में पड़ गये। [illegible] छूट जायेगे। प्रफुल्लता वापिस लौट आयेगी। क्षण भर में सब बदल [illegible] मन का भाव बदला कि सब बदला।

चेखोव ने एक और कहानी लिखी है, कि दो पुलिस वाले एक राह [illegible] रहे हैं और एक कुत्ते ने एक आवारा आदमी को काट लिया है। कुत्ता भी आवारा है। और उस आदमी ने उसकी टांग पकड़ ली है। और होटल [illegible] भीड़ लगी है। और लोग कह रहे हैं इसको मार ही डालो। यह दूसरों को [illegible] सता चुका है। पता नहीं, पागल हो। यह कुत्ता एक उपद्रव हो गया है इस इलाके में।

पुलिस वाले भी दोनों उस भीड़ में खड़े हो गये। उनमें से एक बोला कि खतम ही करो, क्योंकि हमको भी रास्ते पर चलने नहीं देता। कुत्ते कुछ सदा से खिलाफ है संन्यासियों, पुलिसवालों, पोस्टमैन जो भी किसी तरह का यूनिफार्म पहनते है; उनके वे खिलाफ हैं। वे एकदम नाराज हो जाते हैं। हमको भी रात चलने नहीं देता। भौंकता हैं, उपद्रव मचाता है। मार ही डालो।

तभी दूसरे पुलिसवाले ने गौर से कुत्ते को देख कर कहा, कि सोच कर करना। यह तो पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल का कुत्ता मालूम पड़ता है। आवारा नहीं है। मैं भलीभांति पहचानता हूं।

सब रंग बदल गया। वह पुलिसवाला जो कह रहा था कि मार डालो, झपटा उस आवारा आदमी पर और कहा, कि तुमने उपद्रव मचा रखा है। ट्रैफिक को रोक रखा है? छोड़ो उस कुत्ते को। जानते हो यह कुत्ता किसका है कितना मूल्यवान है! कुत्ते को उठा कर उसने कंधे पर रख लिया। और उस आवारा आदमी का हाथ पकड़कर कहा कि चलो पुलिस-थाने।

तभी दूसरे पुलिसवाले ने फिर कहा कि नहीं, वहीं भूल हो गई। यह कुत्ता इन्स्पेक्टर जनरल का नहीं है, सिर्फ मालूम पड़ता है। क्योंकि उसके तो माथे पर काला चिह्न नहीं है, । क्योंकि बिलकुल वैसे ही मालूम हो रहा है। फिर बात बदल गई।

कुत्ता फेंक दिया उस पुलिस वाले ने नीचे और कहा कि कहां आवारा कुत्ता और मैंने उठा लिया उसको! और उस आदमी ने कहा कि पकड़ उसको। खतम कर इसको। उस आदमी ने फिर एक कुत्ते को उठा लिया। उसकी टांग पकड़ ली और पछाड़ने जा ही रहा है जमीन पर, कि दूसरे पुलिसवाले ने फिर कहा कि नहीं। संदेह होता है कि हो न हो, कुत्ता तो वही है। इसके माथेपर काला चिन्ह नहीं है। फिर दोनों झपट पड़े उस आदमी पर कि तुझे लाख दफे कहा है कि यहां पर उपद्रव मत कर। छोड़ इस कुत्ते को। फिर कुत्ता कंधे पर है।

ऐसी वह कहानी चलती है। वह कई दफा बदलती है।

और सारी जिन्दगी ऐसी कहानी है। मेरा—तो सब बदल जाता है। 'तेरा'—सब बदल जाता है। और जगत वही का वही है। न आकाश तुम्हारा है; न तारे तुम्हारे हैं, न नदी-पहाड़ तुम्हारे हैं, न व्यक्ति तुम्हारे हैं। भला तुमसे पैदा हुए हों, तो भी तुम्हारे नहीं हैं। न कोई अपना है, न कोई पराया है अगर

सब है तो परमात्मा के हैं। अगर सब में कोई है, तो परमात्मा है। मेरे और तेरे का सारा खेल मन का है। और मन संसार बनाता है।

फिर ध्यान रखना, तुम सोचते हो शायद कि एक ही संसार है, जिसमें हम सब रहते हैं; तो तुम गलती में हो। यहां जितने मन हैं, उतने ही संसार हैं। यहां जितने लोग हैं, उतने ही संसार हैं।

और एक आदमी के भीतर भी एक ही मन होता तो आसानी थी। एक-एक आदमी के भीतर अनेक मन है। सुबह तुम्हारा मन कुछ और है, दोपहर कुछ और है। सुबह तुम अपनी पत्नी के लिए पत्थर थे, कि तेरे बिना क्षण भर न जी सकूंगा। दोपहर कहते हो कि तेरे साथ न जी सकूंगा। सांझ फिर हवा बदल जायेगी। मौसम बदल जायेगा। सांझ फिर तुम बड़े प्रेम से पत्नी के पास बैठे हो। जैसे पुलिस वाला तुम्हारे कान में बार-बार दोहराये जा रहा है कि यह अपनी है फिर कहता है कि नहीं, अपनीं नहीं है, दुश्मन है।

इससे तो उपद्रव खड़ा हो गया है। पूरे वक्त तुम्हारा मन कुछ न कुछ कहे जा रहा हैं। और मन भी एक नहीं है तुम्हारे भीतर, अनेक है महावीर ने कहा है; मनुष्य बहुचित्तवान है, 'पोलि साइकिक' हैं। एक ही मन होता तो भी हल कर लेते। हजार मन है। इसलिए तुम्हें कुछ भी भरोसा नहीं है कि तुम किस की मान कर चलो। तुम्हारे भीतर कोई एक आवाज नहीं है, हजार आवाजे हैं। सभी का मिश्रित कोलाहल है। एक बाजार हो तुम, एक भीड हो।

तो एक-एक आदमी के भी बहुत से संसार हैं। और फिर इतने लोग हैं जमीन पर, इन सब के संसार है।

सत्य दिखाई पड़ेगा, तो एक होगा। असत्य व्यक्तिगत होते हैं। सत्य सार्वजनिक होता है। सत्य युनिर्वसल है, सार्व भौम है। तुम्हारा सत्य मेरा और मेरा सत्य अलग नहीं हो सकता। तुम्हारा असत्य तुम्हारा, मेरा सत्य मेरा। असत्य निजी होते हैं—प्रायव्हेट। सत्य तो निजी नहीं होता। सत्य तो सार्वभौम होता है। इसलिए जहां भी तुम पाओ, कि तुम्हारे सत्य में किसी तरह का निजीपन है वहीं संदिग्ध हो जाना। सत्य कहीं निजी हुआ है! सत्य तो सबका है। सत्य में सब हैं।

इसलिए अगर तुम कहो कि मेरा धर्म हिन्दू है तो संदिग्ध हो जाना। तुम्हारा धर्म तुम्हारे मन का खेल होगा। क्योंकि वह मुसलमान के विपरीत हैं।

तुम्हारा धर्म अगर जैन है, तो वह हिन्दू के विपरीत है। तुम्हारा धर्म अगर सिक्ख है तो वह जैन के विपरीत है। और धर्म तो सत्य का होगा। तुम्हारे और पराये का नहीं। मेरा और तेरा नहीं। जिस दिन व्यक्ति धार्मिक होता है, उस दिन उसके धर्म में सब लीन हो जाते हैं—सब कुरान, बाईबल, सब वेद। उस दिन उसके पास सार्वभौम सत्य होता है।

लेकिन यह तभी हो पाता है, जब मन खो जाता है। मन तो सार्वभौम में उठने न देगा। मन संसार है। अमन संसार के पार हो जाना है। मन से मुक्त होना, संसार से मुक्त होना है। और तब तुम्हारा सत्य तुम्हारा सत्य न होगा, सभी का होगा। आदमियों का ही नहीं, वृक्षों का भी होगा, पत्थरों का भी होगा, चांद तारों का भी होगा। क्योंकि सत्य तो एक है। सत्य तो अस्तित्व का प्राण है। वह कोई मन की धारणा नहीं है। वह तो जीवन की धारा है।

इसलिए शुद्ध धर्म सिर्फ धर्म होगा; न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। हिंदू, मुसलमान, ईसाई मन के खेल हैं। चर्च, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा मन की बनावटे हैं। वह मन का ही जाल है।

तुमने धर्म तक को मन से देखा है। इसलिए धर्म भी बंट गया। मन से तुम जो भी चीज देखोगे, वह तत्क्षण बट जाएगी। मन बांटने की प्रक्रिया है। मन तोडने का ढंग है। तुमने कभी कांच का टुकड़ा देखा हो प्रिज्म कहते है। उसमें से सूरज की किरण निकालो वह सात रंगों में टूट जाती है। इन्द्रधनुष्य बन जाता है। टुकड़े के पहले, कांच के टुकड़े से गुजरने के पहले तो किरण एक थी, शुभ्र थी, श्वेत थी। टुकड़े से गुजरते ही सात हिस्सों में टूट जाती है। सतरंगा जाल फैल जाता है। इन्द्रधनुष बन जाते हैं।

मन कांच का टुकड़ा है, प्रिज्म है। जीवन-चेतना की किरण इस कांच के टुकड़े में से निकलकर सात रंगों में छंट जाती हैं। उसका श्वेतपन खो जाता है। उसकी सरलता, निर्दोषता, कुंवारापन खो जाता है। फिर सात रंग हो जाते हैं। संसार यानी सात रंग। संसार यानी मन के द्वारा देखा गया सत्य। संसार यानी धारणाओं, वासनाओं के पद के पीछे से झांका गया परमात्मा।

मन भ्रांति है। और मन की भ्रांति से संसार की विराट् भ्रांति पैदा होती है।

मन तो भीतर है क्योंकि भीतर तो परमात्मा है; और मन न बाहर है,

क्योंकि बाहर भी परमात्मा है। तो मन दोनों के बीच में है।

मन को हम क्या कहें? हिंदुओं ने माया कहा है। माया शब्द समझने जैसा है। माया का मतलब झूठ नहीं होता, मया का मतलब भ्रम नहीं होता, माया का मतलब होता है, सच और झूठ के बीच। भ्रम और यथार्थ के बीच।

मन को बिलकुल झूठ भी तो नहीं कह सकते, क्योंकि है। और कितने जन्मों से तुम्हें भटका रहा है। झूठ कैसे भटका सकता है? अगर होता ही नहीं, बिलकुल न होता, तो इतना विराट संसार जो तुम अपने चारों ओर निर्मित कर लेते हो वह कैसे निर्मित कर लेते? मन है तो। नहीं है, ऐसा कहना तो उचित न होगा। लेकिन परमात्मा जैसा है, ऐसा कहना भी उचित न होगा क्योंकि शाश्वत नहीं है, क्षणभंगुर है। बनता है मिटता है। फिर बनता है, फिर मिटता है।

सागर की तरह नहीं है, बुलबुले की तरह है। बुलबुला उठता है, फूटता है। बनता है, मिटता है। और बुलबुले से अगर तुमने संसार को देखा, तो तुम न तो बाहर जीते हो, न भीतर जीते हो। वह तो एक ही चीज है बाहर और भीतर तुम मध्य में जीने लगते हो।

यह भी मध्य की दशा है, सपने जैसी है। सपना होता तो है, अन्यथा तुम देखते कैसे रात? किसी रात तुम सुबह उठ कर कहते हो, आज कोई सपना नहीं देखा और किसी रात कहते हो आज सपने देखे। सपना था तो! देखा है, याद भी करते हो। बता भी सकते हो। थोड़ी याददाश्त है कि ऐसा-ऐसा हुआ सपने में। है तो, लेकिन सुबह जागकर यह भी पता चलता है कि नहीं भी है।

सपना बड़ी बेबूझ पहली है। 'है' कहो, तो गलत। 'नहीं' कहो, तो गलत। कुछ ऐसा है कि 'है' जैसा भी; और कुछ ऐसा है कि 'नहीं' जैसा भी। मध्य में है। आधा-आधा है। आधा सच है आधा झूठ है। थोड़े से गुण उसमें सच्चाई के हैं, क्योंकि पाया नहीं गया।

देखा गया और पाया नहीं गया—यह सपना है।
देखी गयी और पाई नहीं गई—यह माया है।
देखा गया और कभी उपलब्ध न हुआ—यह संसार है।

हमेशा लगा कि है; और जब भी पास गये, तो पाया कि नहीं है। दूर से मालूम पड़ा। पास आकर खो गया। इन्द्रधनुष दिखाई पड़ता है। तुम जरा

पास जाने की कोशिश करो। जैसे-जैसे तुम पास जाओगे, इन्द्रधनुष खोने लगेगा। अगर तुम ठीक वहीं पहुंच जाओ जहां इन्द्रधनुष था, इन्द्रधनुष खो जायेगा। दूर से ही दिखाई पड़ता है। दूरी चाहिए। पास आने से मिट जाता है।

सपना तुम मूर्च्छित रहो, तो दिखाई पड़ता है। होश आ जाये तो टूट जाता है। इतना भी होश आ जाये कि मैं सपना देख रहा हूं, सपना टूट जाता है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि जब तक तुम सपना न तोड़ पाओगे, तब तक तुम माया भी न तोड़ पाओगे। और वह ठीक कहता था। और उसने बड़ी अनूठी प्रक्रिया खोजी थी। वह कहता था कि तुम संसार से मुक्त होना तो बड़ी दूर की बात है। संसार तो बहुत विराट सपना है, जिसे तुमने जन्मों-जन्मों से देखा है। इतनी बार देखा है कि वह तुम्हारे देखने-देखने से सत्य हो गया है। इतनी परतें जम गई हैं तुम्हारे अनुभव की संसार के साथ, कि आज बिलकुल असंभव है मानना कि नहीं है। पहला तुम सपना तोड़ो।

तो गुरजिएफ कहता था अपने साधकों को, वह मैं तुमसे भी कहता हूं, बड़ा कीमती प्रयोग है। करो, तो बड़े परिणाम हो सकते हैं।

सोते वक्त रोज पाँच-सात मिनट, जैसे ही तुम्हें लगे कि अब नींद आने के करीब हैं, पांच-सात मिनिट में आ जाएगी, तुम एक बात भीतर स्मरण रखने की कोशिश करो, कि जो भी मैं देखूंगा, जानूंगा कि यह सपना है...जो भी मैं देखूंगा जानूंगा कि यह सपना है।

तीन महीने तक कोई परिणाम नहीं होंगे। तीन महिने तक तुम दोहराओगे लेकिन रात सपने में भूल जाओगे। सुबह उठकर याद आयेगी कि सोचा था कि जो भी देखूंगा, स्मरण रखूंगा कि सपना है; लेकिन स्मरण न रहा। सपने में पकड़ लिया।

लेकिन तीन महीने के बाद धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी भान की अवस्था आनी शुरू होगी। थोड़ा सा शक पैदा होना शुरू होगा। थोड़ा सा संदेह सरकेगा। सपना भी चलेगा और थोड़ी सी भीतर बेचैनी मालूम होगी कि कुछ गड़बड़ है। और साफ नहीं होगा कि सपना है। लेकिन एक बेचैनी, कुछ है जो ठीक नहीं मालूम हो रहा, कुच गड़बड़ है। कुछ उलझ रहा हूं जाल में। ऐसा एम धीमा-धीमा बोझ उठाना शुरू होगा।

अगर तुमने सतत प्रयास जारी रखा तो तुम धीरे-धरे पाओगे, छह महीने

पूरे होते-होते किसी दिन अचानक ठीक बीच सपने में, नींद न टूटेगी और तुम जाग जाओगे। क्योंकि नींद टूट जाये, फिर तो कोई मतलब नहीं।

नींद टूट जायें, तब तो किसी को भी पता चल जाता है कि सपना था। लेकिन वह पता चलता है सपने के सम्बन्ध में, जो जा चुका है। उसका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो वर्तमान का है। अभी इस क्षण का है। एक दिन तुम पाओगे तीन और छह महिने के बीच किसी एक दिन अचानक तुम पाओगे कि नींद तो लगी है, तुम भीतर जाग गये। तुम देख रहे हो कि यह सपना है।

जैसे ही तुमने देखा कि यह सपना है, सपना तिरोहित हो जाता है। खाली जगह छूट जाती है। और कहां से सपना तिरोहित होता है और वह जो खाली जगह छोड़ जाता है, वही अ-मन है। वह पहली झलक है 'नो-माइंड' की। मन के न होने की पहली झलक है।

फिर तुम इसको बढ़ाये चले जाओ। धीरे-धीरे यह रोज का क्रम हो जाएगा। जैसे ही सपना पकड़ेगा, क्षण भर भी न बीतेगा कि तुम जाग जाओगे। सपना टूट जाएगा। नींद जाती रहेगी। और तुम पाओगे कि नींद में अगर सपना टूट जाता है, तो जागने में विचार टूटने लगते हैं। जैसे ही तुम जागने में विचार कराेगे है, यह भी अचानक भीतर कुछ होश में भर जाएगा और कहेगा कि ये विचार है, यह भी सपना है। विचार भी रुक जाएगा।

अगर नींद में सपना टूट जाये, जागने में विचार टूट जाये, तो तुम्हारा संसार छूट गया।

संसार छोड़ने के लिए हिमालय जाने से कुछ भी नहीं होता; घर छोड़ कर विरागी हो जाने से कुछ भी नहीं होता। क्योंकि घर थोड़े ही संसार है! पत्नी, बच्चे, पति थोड़े ही संसार है! ससार तो तुम्हारे भीतर देखने के ढंग में छिपा है, मूर्छा में छिपा है। तो तुम जहां जाओगे, क्या फर्क पड़ता है? तुम हिमालय चले जाओगे। तुम एक वृक्ष के नीचे कुटी बना लोगे, वह कुटी तुम्हारी हो जाएगी, जैसे महल तुम्हारा था। अब अगर कोई आकर उस कुटी पर अड्डा करने लगेगा, झगड़ा खड़ा हो जाएगा। मार-पीट हो जाएगा। वहीं फौजदारी हो जाएगी। कोई अदालत की थोड़े ही जरूरत है फौजदारी के लिए; कि शहर की जरूरत है कि कानून की जरूरत है। तुम लड़ पड़ोगे कि यह झाड मेरा है। मैं पहले से ही यहां हूं। हटो यहां से। 'मेरा' वहीं पकड़ लेगा। कोई तुम्हारे पैर दबाने लगेगा।

वह तुम्हारा अपना हो जायेगा। वह बीमार होगा, तो तुम दुखी होने लगोगे। वह मरेगा तो तुम रोओगे। घर बस गया। गृहस्थी पैदा हो गई।

एक संन्यासी मरण-शैया पर पड़ा था। और उसके शिष्यों ने पूछा कि हमारे लिये कोई आखरी संदेश? तो उसने कहा कि जो मेरे गुरु ने मुझसे कहा था और मैंने नहीं माना, वहीं मैं तुमसे कहता हूं। तुम कोशिश करना मानने की। मैं असफल रहा।

सब जाग कर बैठ गए कि कोई बहुत महत्वपूर्ण बात, जो गुरु ने उसको कहीं थी और वह भी न मान पाया। और अब हमसे कह रहा है। उसने कहा कि तुम बिल्ली कभी मत पालना।

शिष्य थोड़े हैरान हुए, कि यह कौन सा ब्रह्मज्ञान? वेद में भी इसका उल्लेख नहीं, कुरान में भी नहीं, बाईबिल में भी नहीं, यह कौन सा धर्म? क्या मरते वक्त तुम्हारा दिमाग गड़बड़ हो गया? सन्निपात में हो? हम पूछ रहे हैं कि कोई कुंजी दे जाओ—सूत्र, और आप बता रहे हैं कि बिल्ली मत पालना; सठिया गए हो?

उसने कहा कि नहीं; यही मेरे गुरु ने कहा था और मैं न पाल पाया। मैं तुम्हें अपनी कहानी कहे देता हूं। तुम याद रखना।

गुरु ने मरते वक्त···यही मैंने उसने कहा था, कि क्या करूं? कोई संदेश, सार-सूत्र? उन्होंने कहा कि बिल्ली मत पालना। मैंने भी समझा कि सठिया गए। दिमाग खराब हो गया मरते वक्त। उम्र भी ज्यादा हो गई थी। कोई नब्बे वर्ष थी उम्र। अब दिमाग ठीक काम नहीं कर रहा है। बिल्ली पालने से क्या सम्बन्ध? लेकिन वही भूल हो गई। मैंने समझा कि दिमाग खराब है, वही चूक गया।

फिर बरसों बीत गए। मैं सब छोड़कर जंगल में रहने लगा। साधना करता था। शास्त्र पढ़ता था। मनन, ध्यान में लगा था। कुछ पास न था, बस दो लंगोटियां थीं लेकिन चूहे झोंपड़ी में थे और वे लंगोटी काट जाते। तो मैंने गांव के लोगों से कहा—जो आते थे कभी-कभी भोजन लेकर फल लेकर—कि क्या करूं? उन्होंने कहा कि एक बिल्ली पाल लो।

और मुझे याद भी न आई कि मरते वक्त गुरु कह गया कि बिल्ली मत पालना। बात कुछ कठिनाई को भी न लगी। सीधी-साफ थी, निर्दोष थी। बिल्ली

पालने में झंझट भी क्या ? बिल्ली कोई गृहस्थी है ? कोई ज्ञानी नहीं कह गया कि बिल्ली में गृहस्थी है ? ज्ञानियों ने कहा कि पत्नी मत पालना; पति मत पालना। बिल्ली मत पालना, किसी ने कहा है ? और बिल्ली से अपना क्या लेना-देना ? चूहों और बिल्ली का निपटारा हो जायेगा।

बात जंच गई। बिल्ली पाल ली। लेकिन बड़ी कठिनाई हो गई। बिल्ली को कभी चूहे मिलते, कभी नहीं भी मिलते। बिल्ली भूखी रहती, तो उसको भी पीड़ा होती। उसने गांव के लोगों से कहा कि क्या करूं ? उनसे कहा कि ऐसा करो, एक गाय ठीक रहेगी। आपके भी काम आ जाएगी। और बिल्ली के भी काम आ जायेगी। स्वभावत: गाय पाल ली गई।

अब गाय के लिए घास चाहिए था। कभी गांव के लोग लाते, कभी न भी लाते। तो उसने कहा कि अब यह बड़ी मुसीबत हो गई। अब गाय की चिन्ता करनी पड़ती हैं घास चाहिए, भोजन चाहिए, पानी चाहिए। उनने कहा कि आप ऐसा करो कि बैठे-बैठे कुछ काम भी तो नहीं हैं। थोड़ा घास के बीज बो दो, थोड़े गेहूं भी डाल दो। आपके भी काम आएंगे, बिल्ली के भी काम पड़ेगे।

रास्ता खुल गया बिल्ली से। गाय आई। खेत लग गया। लेकिन कभी संयासी की, तबियत ठीक न होती तो भी मजबूरी में खेत पर काम करना पड़ता। पानी देना है, या बीज बोने का वक्त आ गया। धीरे-धीरे खेती महत्वपूर्ण हो गई। ध्यान-धारणा कोने में पड़ गए। समय ही न मिलता। कभी वर्षा न होती तो पानी खींचना पड़ता। लोगों से पूछा कि अब क्या करना ? मैं बूढ़ा भी हुआ जाता हूं। लोगों ने कहा कि ऐसा करें, गांव में एक लड़की है, उम्र भी ज्यादा होगी। विवाह होता नहीं उसको आपकी सेवा में छोड़ देते हैं।

कोई खतरा दिखाई नहीं पड़ा। लड़की सेवा में आ गई। लड़की खेत भी संम्भालने लगी। बिल्ली की भी देखभाल करती। गाय की भी देखभाल करती। सन्यासी की भी देखभाल करती। सेवा वही करती। थक जाता तो पैर भी दबाती दवा भी देती। धीरे-धीरे मोह जगा। प्रेम बना। बिल्ली सब ले आई। पूरा संसार ले आई।

आखिर एक दिन गांव वाले खुद ही आ गए कि अब यह ठीक नहीं है। क्योंकि आपका राग बन गया और यह जरा अनैतिक है। तो आप शादी ही कर लो, जब राग ही बन गया है।

सन्यासी ने कहा कि बात भी ठीक है। शादी हो गई। बच्चे हो गए। मरते वक्त उसे याद आया कि गुरु ने कहा था, बिल्ली मत पालना।

उसने कहा कि मैंने भी यही भूल की थी। समझा था कि गुरु सठिया गया। डर है कि तुम भी यही सोचोगे और बिल्ली पाल लोगे।

असल में गुरु ने जरा गलत बताई। अगर मैं होता, तो उससे कहता कि लंगोटी मत रखना। क्योंकि बिल्ली तो जरा दूर का मामला है। लंगोटी हो तो चूहे आएंगे : चूहे हो तो बिल्ली आएगी। वह लंगोटी से असल में झंझट शुरू हुई; इसलिए तुम अगर किसी को समझाओ, तो लंगोटी का बताना। बिल्ली का मत बताना। वह सूत्र काम नहीं पड़ा।

असल में कोई भी एक चीज सब ले आएगी। क्योंकि संसार का सवाल नहीं, मन का सवाल है। तुम कहां भाग कर जाओगे ? तुम जहां भी जाओगे, कम से कम तुम तो रहोगे। तुम्हीं लंगोटी हो। और अगर तुम हो तो सब है। तुम हो तो लंगोटा आ जाएगी। लंगोटी चूहे ले आएगी, चूहे बिल्लियां, बिल्लियां गौएं; और संसार बढ़ता जाता है।

तुम्हें पता भी नहीं चलता, एक-एक कदम बढ़ता हैं। इतना आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ता है कि तुम्हें पता भी नहीं चलता कि कोई बढ़ती हो रही है। कभी एकदम से तो संसार तुम्हारे ऊपर झपटता नहीं। अगर लंगोटी से सीधी पत्नी आई होती तो दिखाई पड़ जाता। क्योंकि बीच में एक छलांग से। संसार के आने का ढंग क्रम है। और परमात्मा के आने का ढंग अक्रम है। संसार धीरे-धीरे आता है क्योंकि अगर छलांग से आएगा तो सोये हुए लोग भी जग जायेंगे। परमात्मा छलांग से आता है क्योंकि सोयों को जानना ही है। सोयों को सुलाये नहीं रखना है।

इसलिए जीवन जो परम धन्यता है, वह एक छलांग में हो जाती है। और जीवन का जो रोग है, नर्क है, वह इंच-इंच आता है। धीरे-धीरे आता है। वह इतने चुपचाप आता है कि उसकी पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। कहाँ से आता है, यह भी समझ में नहीं आता।

लंगोटी मत पालना। लेकिन अगर तुम हो तो लंगोटी पालना पड़ेगी। इसलिए अगर ठीक से समझो तो तुम ही लंगोटी हो। जब तक तुम न मिट जाओगे तब तक संसार नहीं मिट सकता। तुम यानी तुम्हारा मन। तुम यानी तुम्हारे

अहंकार। तुम यानी तुम्हारा यह भाव कि मैं हूं। जहां 'मैं' वहां संसार है। जहां मैं नहीं वहां संसार नहीं।

इसलिए ध्यान रखो, जिन-जिन चीजों से तुम्हारा मैं बढ़ता हो, जिन-जिन चीजों से तुम्हारे मैं को शक्ति मिलती हो। अहंकार पुष्ट होता हैं, उनसे सावधान रहना। छोड़ने को नहीं कहता हूं, क्योंकि छोड़ने से कुछ भी नहीं होगा। छोड़ने से भी अहंकार भर सकता है। सावधान होना।

तुम्हारे पास लाखों रुपये हैं, यह तुम्हारी अकड़ है। तुम छोड़ देते हो। तुम छोड़ दो लाखों रुपये, तुम्हारी नई अकड़ पैदा हो जाएगी कि मैंने लाखों छोड़ दिये। और दूसरी अकड़ पहले से ज्यादा होगी। क्योंकि लाखों तो कई के पास हैं; लेकिन लाखों छोड़ने वाले कई नहीं हैं। वे तो बहुतों के पास हैं, उस अकड़ में कोई जान नहीं है। लेकिन लाखों छोड़ने वाले तो बिरले हैं। तब अकड़ और बढ़ जाएगी।

ध्यान रखना, अगर तुमने अहंकार के प्रति जागरण न सम्भाला, तो तुम जो करोगे वह अहंकार से ही होगा—भोग भी, त्याग भी, संसार भी वैराग्य भी। और तुम्हारा अहंकार तो पुष्ट होता चला जाएगा। शरीर को हो सकता है तुम मार डालो बिलकुल, लेकिन मन तुम्हारा बढ़ता जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत मोटी थी। डाक्टरों से सलाह ली। तो डाक्टर ने कहा कि घुड़सवारी ठीक होगी। रोज सुबह घुड़सवारी पर जाये। महीने भर बाद नसरुद्दीन को डाक्टर ने पूछा, राह पर मिला; 'क्या हाल है? क्या खबर? कुछ हुआ?'

नसरुद्दीन ने कहा, बेचारी सूख कर कांटा हो गई। डाक्टर ने कहा, मैंने पहले ही कहा था—प्रसन्न होकर कहा। नसरुद्दीन ने कहा, 'आप समझे नहीं! पत्नी नहीं, घोड़ी। पत्नी तो और मूटा रही है।'

घोड़े को मत सुखा डालना। शरीर घोड़ी है। उसका कितना ही उपवास करवाओ, कुछ हल न होगा। पत्नी तो मुटाती चली जाएगी। वह अहंकार है तुम्हारे भीतर।

तो जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे शरीर को मार डालते हैं कम खाते हैं, कम सोते हैं, भूख ताप सहते हैं, लेकिन भीतर का अहंकार बढ़ता जाता है, जितना वजन शरीर में कम होता है उतना वजन अहंकार में बढ़ता जाया है। इसलिए

त्यागी-तपस्वियों से ज्यादा अहंकारी आदमी तुम्हें कहीं भी न मिलेंगे। वे तो अहंकार के शुद्ध शिखर हैं। अगर शुद्ध अहंकार देखना हो, तो त्यागी में।

भोगी में अशुद्ध होता है। वह चमक नहीं होती। क्योंकि भोगी को खुद ही लगता है, गलत कर रहा हूं। इसलिए भोगी थोड़ा सा डरा होता हैं। भोगी को लगता है, ठीक नहीं हो रहा है। इसलिए अहंकार पूरी प्रगाढ़ता से प्रकट नहीं होता। थोड़ा झुका-झुका रहता है। भोगी थोड़ा विनम्र रहता है क्योंकि अपराध का भाव रहता है।

त्यागी का सब अपराध भाव मिट जाता है। त्यागी अकड़ कर चलता है। त्यागी की पताका उड़ती रहती है। त्यागी भयंकर अहंकार से भर जाता है।

भोगी का भी संसार है, त्यागी का भी संसार है। क्योंकि जहां अहंकार है वहां संसार है।

जिस दिन मैं-भाव गिरता है, उसी दिन सब सपने गिर जाते हैं। यह बड़ा संसार सपना है। खुली आंखों का सपना। दो तरह के सपने हैं : एक, जो तुम बंद आंख से देखते हो। वे इतने खतरनाक नहीं क्योंकि रोज सुबह टूट जाते हैं। एक सपना है, खुली आंख का सपना—यह जो विराट तुम्हें चारों तरफ समझ में आता है, यह बड़ा खतरनाक हैं। क्योंकि जन्मों-जन्मों तुम जनमते हो, मरते हो और नहीं टूटता। जिसने इसे तोड़ लिया वह परम धन्यभागी है।

यह कैसे टूटेगा? कबीर के ये सूत्र उसे तोड़ने की तरफ इशारे हैं।

'अंधे हरि बिन को तेरा।'

कबीर कहते हैं, अगर अपना ही मानना हो तो हरि को छोड़ कर और किसी को मत मानो।

एक दिन तो हरि भी छूट जाएगा। क्योंकि वह भी खयाल कि हरि मेरा है; आखिरी सपने का हिस्सा है। लेकिन जो सपने में है जिसको सपने का कांटा लगा है, उसे दूसरे कांटे से निकलने की जरूरत है। दूसरा कांटा उतना ही कांटा है, जितना पहला।

राह तुम चलते हो, कांटा लग गया। तत्क्षण तुम बबूल का कांटा उठा लेते हो, पहले कांटे को निकालते ही दूसरे कांटे से। फिर दोनों फेंक देते हो।

संसार कांटा है; धर्म भी कांटा है। अभी पत्नी मेरी, पति मेरा, बेटा मेरा,

मकान मेरा, धन मेरा, इज्जत मेरी, पद मेरा —यह कांटा है। 'हरि मेरा'—यह दूसरा कांटा है, जिससे बाकी सब कांटे निकल जाएंगे। फिर इस दूसरे कांटे को संभाल कर घाव में मत रख लेना। नहीं तो तुम मूर्ख साबित हुए, मूढ़ साबित हुए। सब मेहनत व्यर्थ गई। तुम सब गुड़-गोबर कर दिया। दूसरा भी कांटा है। उसकी उपयोगिता थी।

इसलिए पतंजलि ने योगसूत्रों में ईश्वर को भी एक विधि माना है कि वह भी संसार से मुक्त होने की विधि है। बड़ी हैरानी की बात है। और मनुष्य जाति के इतिहास में इतना स्पष्ट रूप से ईश्वर की विधि कहने वाला दूसरा व्यक्ति नहीं पैदा हुआ। पतंजलि ने साफ कहा कि यह भी एक विधि है। इस विधि से रोग मिट जाएगा। जब रोग मिट जाये तो औषधि को फेंक देना। औषधि को ढोते मत रहना।

बुद्ध ने कहा है कि तुम नाव से नदी पार करते हो,। नाव नदी पार कराने के लिए है। फिर जब तुम नदी पार हो जाते हो, नाव को भूल जाते हो। नदी में ही छोड़ जाते हो। उसको फिर सिर पर लेकर मत चलना। फिर यह मत कहना गांव में जाकर नगरों में, कि कैसे छोड़े इस नाव को! इसने नदी पार करवाई।

तब तुम मूढ़ हो। तब तो बेहतर था कि तुम नदी ही पार नहीं करते। अब यह और उपद्रव हो गया। उसी किनारे रहते, वह बेहतर था। कम से कम सिर पर नाव का बोझ तो न था। अब तुम यह सिर पर नाव लेकर चल रहे हो।

बहुत लोग शास्त्रों को पकड़ लेते हैं, सिद्धांतों को पकड़ लेते हैं। बहुत से लोग परमात्मा को भी पकड़ लेते हैं। तब परमात्मा ही लंगोटी बन जाता है। फिर उसी लंगोटी से सारा संसार वापस निकल जाएगा।

'अंधे हरि बिन को तेरा।'

यह तो कांटा समझा रहे हैं कबीर; कि अभी तू एक बात समझ कि हरि के बिना तेरा कोई भी नहीं। न पत्नी तेरी है, सब अजनबी हैं। राह पर मिल गए। राह पर थोड़े वे भ्रम पैदा कर लिए।

कभी तुम सोचते हो कि जिनको तुम अपना कहते हो, कैसे उन्हें मिल गए? तुम्हारे पिता एक ज्योतिषी के पास चले गए एक जन्म-कुण्डली लेकर। किसी

स्त्री की जन्म कुण्डली लेकर एक दूसरे ज्योतिषी के पास चले गए। उन्होंने जन्म-कुण्डली मिला ली, गणित बैठ गया। लक्षण पूरे हो गए। बैंड-बाजे बज गए। तुम्हें सात चक्कर लगवा दिए। वह पत्नी अपनी हो गयी।

कल तक यह अपनी न थी। संयोग है। नदी-नाव संयोग! यह किसी और की भी हो सकती थी। कोई अड़चन नहीं थी। किसी और की भी हो सकती थी, और तब भी इसी भ्रम में होती कि यह मेरा पति है। तुम्हारी पत्नी कोई और भी हो सकती थी। तब भी तुम इसी भ्रम में होते कि यह मेरी पत्नी है। दूसरी पत्नी से दूसरे बच्चे पैदा हुए होते। तब वे तुम्हारे होते। अभी वे तुम्हारे नहीं है। अभी वे किसी और के घर में खेल रहे हैं।

संयोग को सत्य मत मान लेना। राह पर मिल जाते हैं दो लोग। साथ हो लेते हैं। गपशप करते हैं। फिर राह अलग-अलग हो जाती है। बिदा हो जाते हैं। लेकिन हम बड़ी भ्रांति पैदा करवाते हैं।

इसलिए तो विवाह का इतना आयोजन करना पड़ता है। उस आयोजन के पीछे बड़ा मनोविज्ञान है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, क्या जरूरत कि घोड़े पर सवारी निकले दूल्हे की? कि इतने बैंड-बाजे बजें, फुलझड़ी-फटाके छूटें; बरात में खर्च हो? इतने लोग आएं, जायें? इस सबकी क्या जरूरत? सीधा-साधा विवाह हो नहीं सकता?

हो सकता है। लेकिन भ्रम पैदा होना मुश्किल होगा। सीधा-साधा बिलकुल हो सकता है। कोई जरूरत नहीं है। तुम एक स्त्री को मिल गये। तुमने कहा; हमारा विवाह हो गया। दोनों ने एक दूसरे के सात चक्कर लगाये, घर आ गये। लेकिन तुमको शक रहेगा कि ऐसे में यह अपनी हो कैसे गई? उतना उपद्रव चाहिए भरोसा दिलाने के लिए, कि भारी कुछ हो रहा है। कुछ ऐसा महत्वपूर्ण हो रहा हैं जो दोबारा नहीं होगा।

अब घोड़े पर तुम रोज तो बैठते नहीं। एक ही दफा बैठोगे। इसलिए 'दूल्हा राजा'! दूल्हा को हम कहते हैं, 'दूल्हाराजा'। उसे राजा बना देते हैं। एक दिन के राजा हैं वे। और कैसी फजीहत पीछे होने वाली है, कुछ पता नहीं। मगर बैठे हैं अकड़ कर। कटारी वगैरह लटका रखी है। मुकुट वगैरह पहन रखा है। उधार कपड़े हों कोई हर्जा नहीं। लेकिन आज डट कर साज-सामान किया है। और

बराती चल रहे हैं। फौज-फाटा है। बड़े-बड़ों को नीचे चला दिया है। सब नीचे चल रहे हैं। और दूल्हा राजा हो गया एक दिन के लिए।

यह उसके मन पर एक छाप बिठानी है। एक कंडिशनिंग है, एक संस्कार है। बड़े कुशल लोग थे पुराने लोग। उन्होंने पूरा हिसाब रखा है, कि उसको यह भ्रांति पक्की हो जाए कि कोई गाढ़ सम्बन्ध पैदा हो रहा है। और ऐसा अनूठा हो रहा है, कि फिर यही घटना दुबारा नहीं घटने वाली।

इसलिए पूरब के लोग तलाक के विपक्ष में है। क्योंकि पूरब के लोग ज्यादा चालाक है, पश्चिम अभी बचकाना है। उसे अभी अनुभव नहीं है आदमी के मन का। पूरब को हजारों साल का अनुभव है। क्योंकि अगर तलाक संभव है, तो विवाह कभी पूरा हो न पाएगा।

अगर इस बात की संभावना है कि हम अलग हो सकते हैं, तो मिलना कभी भी पक्का नहीं हो पाएगा। जिससे अलग हो सकते हैं उससे मिलना ऊपर-ऊपर ही रहेगा। संसार बसेगा नहीं। भीतर ही बना रहेगा, भीतर बना ही रहेगा, कि कल चाहें तो अलग हो सकते हैं। यह कोई अपनी पत्नी हैं, ऐसा कोई जरूरी नहीं, यह किसी और की भी हो सकती है। कोई और पत्नी हमारी भी हो सकती है। किसी और से हमारे बच्चे पैदा हो सकते हैं। हमारे बच्चे का कोई मामला नहीं है बड़ा।

पश्चिम में उपद्रव पैदा हो गया है। संसार डगमगा गया है। मैंने सुना है, एक अभिनेता हालीवुड में अपनी पत्नी के साथ बैठा है और उनके बच्चे खेल रहे हैं। पत्नी ने कहा कि देखो, मैं हजार बार कह चुकी कि कुछ करना होगा। तुम्हारे बच्चे और मेरे बच्चे, हमारे बच्चों को मार रहे हैं।

पश्चिम में संभव हो गया है। पति के बच्चे हैं किसी और पत्नी से। पत्नी के बच्चे हैं किसी और पति से। फिर दोनों के बच्चे हैं। तुम्हारे बच्चे और मेरे बच्चे मिलकर हमारे बच्चों को मार रहे हैं। इसको रोकना होगा। मगर जहां तुम्हारे बच्चे, हमारे बच्चे और मेरे बच्चे—वहां हमारे का भाव अपने आप क्षीण हो जाएगा। क्या होता है? सब रेत का घर मालूम पड़ता है। यहां कुछ मजबूत नहीं है। यहां कुछ पक्का नहीं है।

एक अभिनेत्री से एयरपोर्ट पर पूछा गया विवाहित या अविवाहित? उसने कहा दोनों; कभी-कभी। कभी विवाहीत, कभी अविवाहित दोनों; कभी-कभी।

जहां ऐसी रेत जैसी स्थिति हो जाए…।

पूरब के लोग चालाक हैं। उम्र चालाकी लाती है। बूढ़े बेईमान हो जाते हैं, होशियार हो जाते हैं। बच्चे निर्दोष होते हैं। उनको पता नहीं, जिन्दगी का राग रंग क्या है।

तो पूरब ने पूरी व्यवस्था की, कि संबंध ऐसे मजबूती से बनाये जाए, कि पक्की भ्रांति हो जाए कि यह पत्नी मेरी है। और पूरब में समझा जाता है कि ऐसा कोई एक ही जन्म का मामला नहीं है। पति-पत्नी तो एक दूसरे का पीछा जन्म-जन्मांतर तक करते रहते हैं। पत्नियां तो इससे बड़ी प्रसन्न होती हैं। पति जरा डरते हैं कि जन्म-जन्मांतर तक? एक तक ही काफी है। एक…मगर अगले जन्म में भी इसी देवी से मिलना होगा? लेकिन पत्नियां इससे बड़ी प्रसन्न होती हैं कि भागकर जाओगे कहां? कोई छुटकारा नहीं है।

ये प्रतीतियां बिठाई गई हैं। मानवशास्त्र की प्रतीतियां हैं। इससे तुम्हें लगता है, मेरा।

बच्चा तुमसे पैदा होता है। तुम सोचते हो मेरा, तुमसे क्या पैदा हो रहा है? तुम केवल प्रयोग-शाला हो। तुम्हारे शरीर केवल बच्चे के आगमन के लिए मार्ग है, इससे ज्यादा नहीं है। और अब तो विज्ञान भी कहता है, कि टेस्ट-ट्यूब में बच्चा पैदा हो सकता है। कोई मां के गर्भ की जरूरत नहीं।

और विज्ञान कहता है कि अब तो आर्टिफिशियल इनसेमीनेषन की सुविधा है। तो हजारों साल तक व्यक्ति का वीर्य-कण सुरक्षित बचाया जा सकता है बर्फ में ढांक कर। तुम मर जाओगे, हजार साल बाद तुम्हारा लड़का पैदा हो सकता है। तुम्हारा वीर्य-कण बचा लिया जाएगा। तो तुमसे क्या संबंध रहा? दस हजार साल बाद तुम्हारा लड़का पैदा हो सकता है। और तुम मर चुके दस हजार साल पहले। तुम्हारी रग-रग मिट्टी में खो गई। फिर भी तुम्हारा बच्चा पैदा हो सकता है। तो तुमसे क्या संबंध रहा; क्या लेना-देना हैं?

तुम केवल मार्ग थे। अपना यहां कोई भी नहीं। यहां तुम अजनबी हो। यहां अपने का भरोसा करके राहत मिलती है, यह सच है। क्योंकि तुम्हें अलग पक्का पता चल जाए कि तुम बिलकुल अकेले हो, तो तुम घबड़ा जाओगे। बेचैन हो जाओगे। हाथ पैर कांपने लगेंगे।

रात अंधेरी है। रास्ता बीहड़, सुनसान है। कुछ आगे का पता नहीं,

कुछ पीछे का पता नहीं, कुछ अपना पता नहीं। किसी का हाथ हाथ में लेकर थोड़ा भरोसा आता है कि कोई साथ है। माना कि वह भी अंधा है, हम भी अंधे।

मैंने सुना कि एक शिकारी भटक गया जंगल में। चार दिन का भूखा-प्यासा अफ्रीका के घने बीहड़ जंगल में। आशा छोड़ दी जीवन की। कोई लक्षण ही न दिखाई पड़े आदमी का कहीं कि पूछ ले, कि पता लगा ले, कि किसी के पीछे हो जाये। बिलकुल अकेला हो गया। चौथे दिन आशा छोड़ ही रहा था, सांझ सूरज ढल ही रहा था, कि उसने एक वृक्ष के नीचे दूसरे शिकारी को बंदूक लिए बैठ देखा। दौड़ा आनंद से। उसके आनंद की तुम कल्पना कर सकते हो। मौत से बच गया। जीवन का वरदान मिला। खुशी में नाचने लगा। उस आदमी को जाकर छाती से लगा लिया।

पर उस आदमी ने कहा कि भाई थोड़ा ठहर। मैं आठ दिन से भटका हुआ हूं। तू इतनी खुशी मत मना। हमको मिलने से कुछ हल नहीं होता।

लेकिन राहत मिलती है। अंधे के पीछे भी तुम चलते हो तो राहत मिलती है कि कोई आगे है। इसलिए तो अंधों के पीछे अंधे कतारबंद चलते रहते हैं। बिना इसकी फिक्र किए कि आगे कोई अंधा है। तुम जैसा ही अंधा है। अंधे अंधों को सलाह देते रहते हैं। साथ देते रहते हैं। मित्रता बनाये रखते हैं।

अगर कभी अंधेरी गली तुम्हें कोई साथ न मिले तो तुम खुद ही जोर-जोर से गीत गाने लगते हो। अगर अधार्मिक ढंग के आदमी हुए, तो फिल्मी गाना गाते हो। और धार्मिक ढंग के हुए, तो हनुमान चालीसा पढ़ते हो। लेकिन फर्क कोई नहीं है। अपनी ही आवाज से भरोसा लेते हैं। थोड़ा हिंमत आ जाती है।

तुमने देखा, नदियों में तीर्थयात्री सर्दियों के दिन में स्नान करने जाते हैं। तो बड़े जोर-जोर से 'हरे राम, हरे कृष्ण'—पानी में डुबकी मारते जाते हैं और राम का नाम लेते जाते हैं। वे कोई राम का नाम नहीं लेते। वह सिर्फ राम की चिल्लाहट में ठंड ज्यादा नहीं लगती। पता नहीं चलता, मन यहां लगा है। 'हरे राम, हरे राम'—जल्दी पानी डाल लिया।

क्योंकि मैंने अपने गांव में देखा, कि पुरुषोत्तम का महीना आता है तो मेरा घर नदी के किनारे ही है, पास ही है—तो स्त्रियां स्नान करने आती हैं। जल्दी

सुबह आती है पांच बजे ब्रह्म मुहूर्त में। उन स्त्रियों को मैं भलीभांति जानता हूं। जिनके मुंह से कभी हरे राम नहीं सुना गया वे भी पानी में आकर एकदम 'हरे राम, हरे राम' करने लगती हैं। तो मुझे लगा, कि वह पानी बड़ा 'रहस्यपूर्ण मालूम पड़ता है। उन स्त्रियों को मैं भलीभांति जानता हूं। इनमें से कोई 'हरे राम' वाली नहीं है। यह अचानक क्या हो जाता है इनको, पानी में उतरते ही से? तब मैंने पानी में उतरकर देखा पांच बजे। तब समझ में आया। नास्तिक भी कहेगा। ठंडा पानी! घबड़ाहट छूटती है। उस घबड़ाहट में कुछ भी बको, राहत मिलती है। अंधेरे में कुछ भी गुनगुनाने लगो' भरोसा आता है।

अंधे अंधों का हाथ पकड़ लेते हैं; लगता है, कोई है; अकेला नहीं हूं।

इसलिए तो तुम समूह में जीते हो। इसलिए तो तुम समूह बना कर जीते हो। अकेले में डर लगने लगता है। समूह में निश्चित हो जाते हो। इतने लोग हैं, ठीक ही होगा। जहां भीड़ जाती है, वहां जाते ही। अकेला खड़ा होने को किसी की हिम्मत नहीं है। क्योंकि अकेले में पता चलता है, यहां कोई भी मेरा नहीं है। भयाक्रांत हो जाओगे। आत्मा कंपेगी। उस कंपन में जी न सकोगे।

क्योंकि जिसने भी अकेलेपन को जान लिया, वह परमात्मा की खोज में लग जाता है। जो समाज में समझता है, कि सब पा लिया वह परमात्मा से वंचित रह जाता है। जो अकेला हो गया, वह खोजेगा ही। क्योंकि अकेला कोई भी नहीं रह सकता। परमात्मा की खोज करनी ही पड़ेगी। कोई साथी चाहिए। असली संगी चाहिए।

'अंधे हरि बिन को तेरा। कबन सूं कहत मेरी मेरा।'

और तू किन-किन से कह रहा है, कि तुम मेरे हो, तुम मेरी हो। किस-किस से तू कहता फिरा। और जिनसे तू कह रहा है, वे भी तेरे पास इसलिए आ गये हैं कि अकेले होने में उन्हें डर लगता है। एकांत में घबड़ाहट होती है।

तो बीमार, बीमार को सहारा दे रहे हैं। अंधे, अंधों को मार्ग दे रहे हैं। नासमझ, नासमझों को समझदारी दे रहे हैं।

'कबन सूं कहत मेरी मेरा?
ताजि कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि को कहा भुलाना।'

'तजि कुलाक्रम'—छोड़ छोड़ ये कुल, वंश, परिवार, समाज समूह की बातें। 'तजि कुलाक्रम'—छोड़ यह अभिमान। क्योंकि जब भी तुम किसी चीज को कहते हो 'मेरा' उससे तुम्हारा

मैं' निर्मित होता है।

थोड़ा सोचो; अगर तुम्हारा कुछ भी न हो 'मेरा' जैसा कुछ भी न हो, क्या तुम अपने 'मैं' को सम्हाल पाओगे? 'मैं' गिर पड़ेगा तत्क्षण। उसको तो बैसाखियां चाहिए 'मेरे' की। इसलिए जितना तुम्हारा 'मेरे' का विस्तार होता है, उतना ही सुदृढ़ तुम्हारा 'मैं' होता है। अगर तुम्हारे पास बड़ा राज्य हो, तो तुम्हारे पास 'मैं' मजबूत होता है। छोटी सी झोंपड़ी हो, तो उतना ही बड़ा 'मैं' होता है। बड़ा महल हो, तो उतना ही बड़ा 'मैं' होता है। दो-चार, दस रुपए की पूंजी, तो उतना ही 'मैं' होता है। करोड़ों की पूंजी, तो उतना 'मैं' होता है।

इसीलिए तो लोग विस्तार की तरफ दौड़ते हैं। कोई भी चीज हो, विस्तार होता चला जाए। फिर विस्तार किसी भी ढंग का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कर विस्तार के पीछे 'मैं' की भूख है। क्योंकि मैं बिना विस्तार के नहीं रह सकता।

यह तो हो सकता है कि तुम धन इकट्ठा न करो, ज्ञान इकट्ठा करो। तुम्हारे पास बड़ी जानकारियां हों, ऐसी कि किसी के पास नहीं; उससे भी काम चल पाएगा। यह भी हो सकता है, कि तुम जानकारी भी इकट्ठी न करो, तुम त्याग करो। तुमने इतने उपवास किए, जितने कभी किसी ने नहीं किए, उससे भी काम चल जाएगा। यह भी हो सकता है कि उपवास भी मत करो, शिष्य इकट्ठे कर लो। तो जितने तुम्हारे शिष्य हैं, उतने किसी के भी नहीं। तो भी काम चल जाएगा।

एक बात ध्यान रखना। 'मैं' विस्तारवादी है। अहंकार साम्राज्यवादी है, वह इम्पिरियलिस्ट है। वह विस्तार में जीता है। अगर तुमने विस्तार न किया, तो वह सिकुड़ने लगता है। और अगर तुम सारा मैं का भाव छोड़ देना चाहते हो तो मेरा का भाव छोड़ दो। वह भोजन है। वह नहीं मिलता तो मैं अपने आप गिर जाता है।

न पत्नी तुम्हारी, न पति तुम्हारा, न बेटा तुम्हारा, न मकान तुम्हारा, न जमीन तुम्हारी, कैसे खड़े रहोगे? मैं को कहां सम्हालोगे? बैसाखी चाहिए। मैं तो बिलकुल लंगड़ा है। अपने से तो चल ही नहीं सकता। मेरे की बैसाखियां सम्हाले रखती हैं। हटा लो सब बैसाखियां और तुम पाओगे, पूरा भवन गिर

गया।

'तजि कुलाक्रमअभिमानी⋯।

छोड़ यह अहंकार मेरे का।

'⋯झूठे भरमि कहां भुलाना।'

झूठी बातें हैं 'मेरे' की। कौन यहां किसका है? यहां तुम अपने ही हो जाओ, तो काफी है। यहां कौन किसका है?

'झूठें तन की कहा बड़ाई, जे निमिष माहिं जरि जाई।'

और इस शरीर की क्या तू प्रशंसा करता रहता है? और इस शरीर की क्या तू स्तुति गाता रहता है? इस शरीर को क्या लेकर फूला-फूला फिरता है? इस शरीर को लेकर क्या तू अकड़ा-अकड़ा फिरता फिरता है? क्षण भर में जल जाएगा। राख हो जाएगा।

और शरीर के आधार पर तो तेरे, 'मेरे-तेरे' के संबंध है। तू कहता है कि यह मेरी मां, क्योंकि इससे तेरा शरीर पैदा हुआ। तेरे शरीर की क्या कीमत! कहता है, 'ये मेरे पिता,' क्योंकि इनसे मेरा शरीर पैदा हुआ। तू कहता है, यह मेरा बेटा, क्योंकि यह मेरे शरीर से पैदा हुआ।

'⋯जिन निमिष माहि जरि जाई।'

क्षण भर न लगेगा। लपटें उठेंगी चिता की और सब राख हो जाएगा। सारे संबंध इस क्षण में जल जाने वाले शरीर के संबंध हैं।

'झूठे तन की कहा बड़ाई।

तू क्यों इस स्तुति में फूला फिरता है?

'⋯जिन निमिष माहि जर जाई।'

बुद्ध अपने भिक्षुकों को मरघट भेजते थे कि जाकर वहां रहो, देखो, क्या घटता है तन को। रोज लाशें चली आती हैं।

और तब तो बिजली से जलाने के साधन न थे। तब भी निमिष माहि जर जाई! तब तो घड़ी दो घड़ी लगती थी। लेकिन अब तो कबीर का वचन बिलकुल ही सच हो गया। सब तो बिजली से जलते हैं। निमिष मात्र में ही जलते हैं। बिलकुल शब्दशः सही है।

बुद्ध भिक्षुओं को कहते थे, बैठो चिताओं के पास। ध्यान करो। उस ध्यान

से बहुत कुछ मिलेगा। रोक भिक्षु देखता रहता; चितायें जलती। लोग चढ़ा दिए जातें। क्षण भर में सब राख हो जाता। लोग वापिस लौट जाते। मित्र, प्रियजन, अपने—जिन्हें सदा अपना माना, जिनके लिए सदा यह आदमी जिया, उनमें से कोई इसके साथ नहीं जाता। इनमें कोई इसके साथ घड़ी भर रहने को राजी नहीं।

लाश आ जाती है घर में, आदमी मर गया, तो घर के लोग उतावले होते हैं कि जितनी जल्दी ले जाओ। क्योंकि जितनी देर लाश रह जायेगी उतनी देर घाव मालूम पड़ेगा। उतनी देर आंसू कैसे सूखेंगे ? पत्नी भी पति मर जाये तो उसकी लाश के साथ रात में घर रहने को राजी नहीं होती।

अभी यहां कुछ दिन पहले पूना में एक स्त्री की हत्या कर दी गई। तो पति ने, जब पति आया, घर नहीं ठहर सका, जिस कमरे में हत्या की गई है। होटल में जा कर ठहरा। डर लगता है। घबड़ाहट होती है उस कमरे में जाने में। जहाँ उसने बहुत राग-रंग पत्नी के साथ देखे होंगे, सोचे होंगे बहुत सुख के क्षण, सपने संजाये होंगे, वहां घबड़ाहट होती है। मरते ही कोई व्यक्ति तुम्हें डराने लगता है।

एक मित्र मेरे पास आये। और उन्होंने कहा कि मेरी पत्नी मर गई है। तो वह ठीक स्थान पर स्वर्ग इत्यादि पहुंच गई है, या नहीं ? मैंने पूछा, तुम्हें उसकी फिक्र पड़ी है ? पहुंच गई होगी। क्योंकि सभी लोग मरते हैं तो स्वर्गीय हो जाते हैं, नर्क तो कोई जाता दिखाई पड़ता नहीं क्योंकि जो भी मरा, उसी को हम कहते हैं स्वर्गीय हो गया। राजनीतिज्ञ नेता तक मर कर स्वर्गीय हो जाते हैं, तो बाकी का तो कहना ही क्या ? नर्क तो कोई जाता मालूम नहीं पड़ता। घबड़ाओ मत, पहुंच ही गई होगी।

उसने कहा नहीं, जरा मुझे···अब आपसे क्या छिपाना ! रात में मैं सोता हूं तो मुझे लगता है, कि वह कुछ खटरपटर जैसे करती—जैसी पहले भी उसकी आदत थी। देर तक उसको नींद नहीं आती थी तो कहीं कपड़ा निकाले, कहीं रखे, कहीं सामान बदले, कहीं फर्नीचर को फिर से जमाये। मुझे रात में ऐसा लगता है कि कहीं प्रेत तो नहीं हो गई ? तो मैं, आज तीन महीने से उस कमरे में सो नहीं रहा हूं।

तुम्हारी पत्नी थी, प्रेम-विवाह किया था। अब मर गई तो इतना क्या घब-

ड़ाते हो ? इतना क्या डर ? और तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि प्रेत हो गई तो फिर मौजूद है कमरे में। कहने लगे क्षमा करो। ऐसा शब्द मत कहो। मैं घर छोड़ दूंगा। वैसे ही नहीं जा रहा हूं। तालाचाबी मार रखी है। लेकिन कभी भी जाता हूं, तो मुझे शक होता है कि कमरे में कुछ हो रहा है।

जिनको तुमने अपना माना, अगर तुम आत्मा हो कर उनके पास जाओगे तो वे घर छोड़ देंगे। शरीर से ही सारा संबंध था। आत्मा का कोई संबंध ही नहीं है। और शरीर का ही सारा संसार है।

'झूठे तन कहां बड़ाई, जे निमिष माहि जर जाई।
जब लग मनहि विकारा तब लग नहि छूटे संसारा।'

और जब तक मन में विकारा है अहंकार का, मन में विकार है वासना का, मन में विकार है, तब तक संसार है। मन का विकार ही संसार है। और मन की विकृत दशा तुम्हारे संसार का मूल आधार है। संसार को छोड़कर मत भागना। विकार को त्याग देना।

विकार क्या हैं ? मूर्च्छा, सोया-सोयापन, एक बेहोशी।

'जब मन निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।'

और जब मन निर्मल हो जाता है, कोई स्वप्न नहीं रह जाता मन में। स्वप्न मन है। कोई विचार नहीं रह जाते; विचार ही विकार है। तब मन ही नहीं रह जाता। तब तो निर्मल आत्मा रह जाती है।

मन का संबंध संसार से है, आत्मा का संबंध परमात्मा से है। मन रहेगा तो संसार तुम्हारे चारों तरफ। आत्मा तुम हुए मन न रहा, परमात्मा चारों तरफ। तुम जैसे हो, वैसे से ही संबंध हो सकेगा। क्योंकि समान का मिलन होता है।

'जब निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।
ब्रह्म अगनि, ब्रह्म सोई···।'

तब तुम्हारे भीतर की छोटी सी अग्नि, छोटा सा दिया परमात्मा की महा-अग्नि में खो गया।

'···अब हरि बिन और न कोई।'

अब हरि के बिना कोई भी न बचा। तुम भी न बचे। अब सिर्फ परमात्मा का होना रह गया।

'जब पाप पुन्नि भ्रम जरि, तब भयो प्रगास मुरारी।'

यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है। कबीर कहते हैं, कि जब पाप और पुण्य दोनों भ्रम मिट जाते हैं। दोनों जल जाते हैं। पाप भी, पुण्य भी। तब भयो प्रगास मुरारी। तभी मुरारी के दर्शन होते हैं। तभी परमात्मा की झलक आती है।

पाप और पुण्य दोनों के भीतर छिपा हुआ रोग है, वह रोग है, कर्ता के भाव अहंकार। पापी कहता है, मैंने पाप किये। पुण्यात्मा कहता है, मैंने पुण्य किये। लेकिन दोनों में एक बात समान है—'मैं'।

और पापी तो थोड़ा डरता है घोषणा करने में कि मैंने पाप किये। छिपाता है, पता न चल जाये। लेकिन पुण्यात्मा घोषणा करता है। बैंड-बाजे बजवाता है। डुंडी पिटवाता है, कि मैंने इतने पुण्य किए। पुण्यों का लेखा-जोखा रखता है। पापी तो भूल भी जाए, पुण्यात्मा नहीं भूलता। इसलिए पुण्यात्मा का बड़ा सूक्ष्म अहंकार होता है।

इस बात को खयाल में रख लो। नीति समझाती हैं पाप छोड़ो, पुण्य करो। धर्म समझता है, दोनों छोड़ो। क्योंकि जब तक कर्ता है, तब तक कुछ भी न छूटेगा। नीति कहती है, पाप त्याज्य है, पुण्य कारणीय हैं। इसलिए नीति का धर्म से बहुत गहरा संबध नहीं है। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। सोवियत रूस भी नैतिक है, और शायद तुम आस्तिकों से ज्यादा नैतिक है।

क्योंकि नीति का कोई सम्बन्ध परमात्मा से नहीं है। न नीति का कोई संबंध धर्म से हैं। नीति तो समाज-व्यवस्था का अंग है। नीति का संबंध तो सामाजिक चेतना से है। तुम अच्छा करो, बुरा मत करो। क्योंकि तुम बुरा जिनके साथ करते हो, वे भी बुरा करेंगे। तुम अच्छा करोगे, वे भी अच्छा करेंगे। अच्छा करने से अच्छे करने की संभावना बढ़ेगी। बुरा करने से बुरे करने की संभावना बढ़ेगी। धीरे-धीरे अगर सभी लोग बुरा करने लगे, तो तुम भी बुरा न कर पाओगे। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे।

इसीलिए नीति का सूत्र है, कि तुम वही करो दूसरों के साथ जो तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करे। इसका परमात्मा, मोक्ष, ध्यान से कोई सम्बन्ध नहीं। यह सीधी समाज-व्यवस्था है।

धर्म नीति से बहुरत ऊपर है। उतने ही ऊपर है, जितना अनीति से ऊपर है।

अगर तुम एक त्रिकोण बनाओ, तो नीचे के दो कोण नीति और अनीति के हैं और ऊपर का शिखर कोण धर्म का है। वह दोनों से बराबर फासले पर है। इसलिए धर्म महाक्रांति है। नीति तो छोटी सी क्रांति है, कि तुम पाप छोड़ो। धर्म महाक्रांति है, कि तुम पुण्य भी छोड़ो। पाप छोड़ना ही है, पुण्य भी छोड़ना है। क्योंकि जब तक पकड़ है, तब तक तुम रहोगे। पकड़ छोड़ो। कर्ता का भाव चला जाये।

'जब पाप पुन्नि भ्रम जारी...।'

जब पाप और पुण्य दोनों के भ्रम जल गए, तब भयो प्रगास मुरारी। तभी कोई परमात्मा को उपलब्ध होता है।

'कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।'

यह बड़ा अनुठा वचन है। इसे तुम्हारे हृदय में गूंज जाने दो। क्योंकि इससे महत्वपूर्ण परिभाषा परमात्मा की कभी नहीं की गई। हजारों लोगों ने परिभाषा ठीक की है, परमात्मा कैसा। लेकिन कबीर की परिभाषा बड़ी-बड़ी ठीक हैं, एकदम है। परिभाषा अगर कोई परमात्मा के करीब पहुंचाती है, तो कबीर की पहुंचाती है।

'कहे कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां।'

क्या मतलब हुआ इसका? यह तो बड़ी बेबूझ बात मालूम पड़ती है—'जहां जैसा, तहां तैसा।'

जब मन मिट जाता है तो तुम पाओगे कि फूल में परमात्मा फूल। पत्थर में पत्थर; वृक्ष में वृक्ष, सरिता में सरिता; सागर में सागर।

'कहे कबीर हरि जैसा, जहां जैसा तहां तैसा।

तो कोई परमात्मा ऐसा खड़ा नहीं हो जायेगा, हाथ में मुरली लिए, मोर-मुकुट बांधें! ऐसा कोई सजा सजाया परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो जायेगा। कहीं हो जाये तो सावधान रहना। कोई धोखा दे रहा है। पुलिस को खबर करना कि कोई चालबाज मुरारी बन कर खड़ा है। कोई परमात्मा धनुष-बाण लेकर खड़ा न हो जायेगा सामने।

और धनुष-बाण फायदा भी क्या? अब एटमबम की दुनिया में धनुष-बाण लिए खड़े हैं रामचन्द्रजी। जंचेंगे भी नहीं। और एटमबम हाथ में लिए खड़ा हो तो और भी बेहूदा लगेगा।

आदमी की कल्पनाएं हैं। इनसे परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है। जब मन गिरता है' तो मन के राम, मन के कृष्ण भी खो जाते हैं। परमात्मा तो नहीं है ही। सब रूपों में छिपा अरूप। गुलाब के फूल में हुआ है। गुलाब का फूल। पत्थर में है, पत्थर। कहीं कुछ बदलने की जरूरत नहीं! जहां पाओगे, वहीं मौजूद है। वहीं सिर झुका लेना। और तुम्हारे भीतर भी वही है। सिर झुकाया तो भी चलेगा। क्योंकि कौन किसके लिए झुकेगा?

जिसको कृष्णमूर्ति कहते हैं··· कृष्ण मूर्ति से लोग पूछते हैं, 'व्हाट इस ट्रुथ।' सत्य क्या है? तो कृष्णमूर्ति कहते हैं—'देट व्हिच इज' 'जो हैं। कबीर को दुहरा रहे हैं। उनको पता भी न हो। क्योंकि कृष्णमूर्ति को रस नहीं है कबीर को या उपनिषदों को, या वेदों को पढ़ने में। कोई जरूरत भी नहीं है। अपना-अपना ढंग है। लेकिन कृष्णमूर्ति अगर कबीर को पढ़े होते तो पाते कि कबीर वही कह रहे हैं—'देट व्हिच इज, : 'जहां जैसा तहा तैसा'।

कुछ और नया हो जायेगा। यही जो चारों तरफ मौजूद है, एक नये रूप में प्रकट होगा। इसकी व्याख्या बदल जाएगी। अभी तुम्हें लगता है, यह प्रकृति है, तब तुम्हें लगेगा, परमात्मा है। अभी तुम्हें लगता है, ये लोग बैठे है चारों तरफ। तब तुम्हें लगेगा, कि कृष्ण बैठे हैं चारों तरफ।

तुमने चित्र देखा होगा: पुराने घरों में टंगा रहता था। अब तो धीरे-धीरे खो गया। कृष्ण का एक चित्र, जिसमें सोलह हजार गोपियां नाच रही हैं। और सभी गोपियां को लग रहा है, कि कृष्ण उनके साथ नाच रहे हैं। कृष्ण सोलह हजार हो गये हैं।

जहां तुम पाओगे, पाओगे, कृष्ण तुमसे लिपट कर नाच रहे हैं। हवा के झोंकों में उनकी ही भाव-भंगिमा है। फूल की गंध में उन्हीं का आना हुआ है। पक्षी से कंठ से उन्होंने पुकार दी है। नदी के कलकल नदी में उन्हीं की पगध्वनि सुनी गई है। हर गोपी पाएगी, कि सब तरफ से कृष्ण उसको घेर कर नाच रहे हैं। वह चित्र बड़ा प्यारा है।

जो है, वह परमात्मा है। जिस दिन तुम्हारा होना मिट जायेगा, उस दिन वह प्रकट हो जायेगा।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा अस्तित्व है। परमात्मा का कोई नाम-धाम, ठिकाना नहीं है। क्योंकि परमात्मा सभी कुछ है। सभी कुछ का होना,

सभी कुछ के भीतर छिपा हुआ जो सार-गुण है होने का; वही परमात्मा है—'है पन'।

इसे समझो। गुलाब का फूल लाल है, सुर्ख है। गेंदे का फूल पीला है, स्वर्ण जैसा। गुलाब का फूल किसी सुन्दर स्त्री के ओंठ जैसा। बड़े अलग हैं। वृक्ष अलग अलग हैं। सब की हरियाली अलग है। सब का गीत, सबका नृत्य अलग है। पास में खड़े गुलमोहर के फूल लाल हैं। 'लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।' और वहां दूर खड़े अमलताश के वृक्ष में फूल स्वर्ण जैसे हैं, पीत हैं। कोई तालमेल नहीं। अमलताश के पत्ते अलग गुलमोहर के पत्ते अलग। लेकिन दोनों में एक चीज समान है। अमलताश 'है', गुलमोहर 'है', गुलाब 'है', मैं 'हूं'। तुम 'हो', पत्थर 'है', चट्टान 'है' आकाश 'है'। 'है-पन' समान है। और सब चीजें अलग हैं।

यह जो है, 'है-पन,' 'इजनेस'—वही परमात्मा है।

इसलिए कबीर कहते हैं 'कहे कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।'

मत जाना मंदिर। जहां हरि को जैसे पाओ, वहां हरि को वैसे ही मान लेना, फूल में दिखे तो उसी से बात कर लेना। उसी के पास थोड़ी देर बैठ जाना। एक गीत गुनगुना लेना आकाश में दिखाई पड़े, उसी में झांक लेना। चांद-तारों में दिखाई पड़े, उन्हीं से थोड़ी गुफ्तगू कर लेना। नदी की कलकल में सुनाई पड़े तो नदी में कूद जाना, जरा तैर लेना परमात्मा में।

जब तक तुम मंदिरों-मस्जिदों में देखोगे, तब तक तुम आदमी के बनाये गये परमात्मा से उलझे रहोगे। वह मन का ही खेल है। तुम्हारे मंदिर-मस्जिद सब संसार में हैं, परमात्मा में नहीं। क्योंकि वे मन का विस्तार हैं।

मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान होता था। पड़ोस में एक पुर्तगीज चर्च था। बड़ा सुन्दर चर्च था। बड़ा बगीचा था। पर जिस घर में मैं ठहरता वह जैन घर था। मैं सुबह उठकर चर्च के बगीचे में चला जाता। एक दिन घर के मेजबान को पता चला। वे आये और बड़े नाराज हुये और कहा कि आपको पता नहीं, यह चर्च है। अगर आपको मंदिर ही जाना है, तो मुझसे कहिये। जैन मंदिर ले चलूं।

मैं उससे कुछ बोला न। नासमझों से बहुत बार न बोलना ही समझदारी है। चला गया चुपचाप उनके घर। उन्हें बड़ा जघन्य अपराध मालूम पड़ा, कि मैं और

चर्च गया। और न केवल गया, वहां शांति से बैठा था।

फिर कुछ वर्ष बाद संयोग की बात, उनके घर फिर मेहमान हुआ। और उन्होंने कहा कि आपको एक खुश-खबरी सुनाएं। वह पुर्तगीज चर्च बिक गया और हम लोगों ने खरीद लिया। पुर्तगीज लोग छोड़कर चले गये। वह चर्च बिक गया और हमने खरीद लिया। अब तो जैन मंदिर हो गया। आइये आपको दिखाऊं। वही चर्च! अब वह जैन मंदिर है। तख्ती बदल गई।

वृक्ष वहीं है। परमात्मा अब भी वहीं है 'कहै कबीर हरि ऐसा''। लेकिन उनका परमात्मा बदल गया। वृक्ष वही है। फूल अब भी वहां वैसे खिलते हैं। अब वे कुछ ज्यादा रंग-रौनक से नहीं खिलते क्योंकि यह जैनियों का मंदिर हो गया। पहले कोई ज्यादा रंग-रौनक से नहीं खिलते थे। क्योंकि यह ईसाईयों का चर्च था।

फूलों को पता ही नहीं है, कि आदमियों की कैसी मूर्खतायें हैं। फूलों को, वृक्षों को, पता ही नहीं चला होगा कि तख्ती बदल गई। तख्ती भर बदली और कुछ न बदला। तख्तियों में परमात्मा नहीं है। वे आदमियों की हैं। तुम्हारे लेबलों में परमात्मा नहीं है; वे तुम्हारे हैं।

अब वे बड़े प्रसन्नता से मुझे ले गये। सब कुछ वही है। दीवालें वही है। पर मैंने उनसे कुछ कहा न। नासमझों से न कहना ही कुछ समझदारी है। वे बड़े प्रसन्न हैं। अब मन्दिर है।

आदमी कैसा मूढ़ है! तुम परमात्मा को चाहते हो तो आदमी की मूढ़ता से बचना। और आदमी की मूढता बड़ी शास्त्रों से आवेष्ठित है। बड़ी पांडत्यपूर्ण है। इसलिए तुम पहचान भी न पाओगे।

'भूले भरमि मरे जिनि कोई, राजाराम करै सो होई।'

यह सूत्र अहंकार के ऊपर अंतिम आघात है।

'भूले भरमि मरे जिनि कोई—'

और जिसने भी इस भ्रम में जीवन को किया कि मैं कुछ कर लूंगा, वह व्यर्थ ही मर जाता है। भूले भरमि मरे जिन कोई।' इस भ्रम से जो जीता है कि मैं कुछ कर लूंगा, वह यूं ही मर जाता है।

'—राजाराम करै सो होई।'

परमात्मा जो करता है, वही होता है। जिसको यह बात ख्याल में आ गई,

कि परमात्मा ही सब तरफ है, वही सब कुछ है। मेरे किए क्या होगा? मैं तो एक छोटी लहर हूं। इतनी छोटी तरंग हूं कि मैं कोई दिशा दे सकूंगी सागर को? क्या वह सम्भव होगा कि मैं जिस तरफ जाऊं, सागर वहां जाय? यह तो असंभव है। सागर के साथ ही मैं हो लूं, तो ही गन्तव्य मिल सकेगा।

जब सभी तरफ परमात्मा है; 'जहां जैसा तहां तैसा, कहे कबीर हरि ऐसा। जब वही वही है जब वही तड़फ रहा है, वही नाच रहा हैं, जब वही पीड़ित है, वही आनन्दित है—और मैं छोटी सी तरंग हूं। मुझसे भी सांस ले रहा है। मुझसे वही जी रहा है। जन्म लिया मुझमें, वहीं मृत्यु भी लेगा। मुझमें वही यात्रा कर रहा है। मैं तो उसी यात्रा का एक कदम हूं। जिसने ऐसा जाना, उसका वह भ्रम छूट जाता है कि मेरे किये कुछ होगा।

'...राजाराम करे सो होई।'

वह जो करता है, वही होगा।

तब परम-संतोष आ जाता है। तब परितोष बरस जाता है। तब सब तरफ से फूल बरस जाते हैं संतुष्टि के। तब तुम्हारे जीवन में कोई असंतोष नहीं रह जाता। मन असंतोष है। आत्मा परम संतोष हैं, परम तुष्टि हैं। जहां कोई रेखा ही नहीं बचती अभाव को।

इसलिए दो बातें ख्याल में रख लेनी जैसी हैं। कर्ता के भाव से बचना। चाहे पुण्य हो चाहे पाप, मेरे के भाव से बचना। चाहे सांसारिक बातें हों, चाहे धार्मिक। मत कहना, 'मेरा मंदिर' क्योंकि मेरी दुकान और मेरा मंदिर दोनों में कोई फर्क नहीं। वह 'मेरा' दोनों को ही नष्ट कर रहा है। और मत कहना कि मैंने पुण्य किया, पाप नहीं। क्योंकि 'किया' वही पाप है और 'मेरा भाव संसार है। दो चीजों से गिर जाना।

कैसे गिरोगे?

धीरे-धीरे 'मैं' के सहारे छोड़ो। और आखिरी सहारा तब छूट जाता है 'मैं' का, जब पता चलता है कि उसके ही करने से सब होगा। तुमने जन्म लिया? तुम्हें जन्म दिया गया है। तुमने लिया नहीं। इसमें तुम्हारा कर्तृत्व क्या है? तुम जवान हुए। तुमने किया क्या है? तुम्हारा कर्तृत्व क्या है? जवानी आई। तुम श्वास लेते हो—तुम श्वास लेते हो? अगर तुम श्वास लेते हो, तब कोई मरेगा ही नहीं। क्योंकि मौत आ जाये और तुम लिए चले जाओ। मौत क्या करेगी?

तुम श्वास लेते नहीं, श्वास चलती है। लेने जैसा कुछ भी नहीं है। श्वास ही तुमको ले रही है। तुम श्वास को नहीं ले रहे हो।

जीवन को थोड़ा गौर से पहचानो और तुम पाओगे, सब हो रहा है। जो तुम करते हो, वह भी हो रहा है। यह तुम्हारा ख्याल, कि मैं जा रहा हूं, यह भी ख्याल हो रहा है। जब कोई व्यक्ति जीवन को समझना शुरू करता है तो कर्तापन विसर्जित हो जाता है।

'...राजाराम करे सो होई।'

तब समष्टि चल रही है। हम उसके अंग हैं। करने का बोझ उतर जाता है। तुम मुक्त और तुम परितुष्ट। और जब हृदय में गूंज उठती है परितोष की वही परमानन्द है; वही सच्चिदानंद है।

□

हम तो एक एक करि जाना,
दोई कहै, तिनही को दी जब, जिन नाहिन पहचाना :
ऐकै पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा :
एकहि खाक घड़े सब भांड़े, एक ही सिरजनहारा।
जैसे बाढ़ी काष्टे ही काटे, अगनि न काटै कोई।
सब घटि अंतर तू ही व्यापक, धरै सरूपे सोई।
माया मोहे अर्थ देखि करि काहे कू सरबाना।
निर्भय भया कछु नहीं व्यापै, कहे कबीर दिवाना ॥

5. एक ज्योति संसारा

20 मई, 1675; प्रातः 8

धर्म है, असीम की खोज, आदि की खोज। जो न कभी प्रारम्भ हुआ और न कभी समाप्त होगा, उस अजस्त्र जीवन-धारा की खोज।

अस्तित्व तो अखंड है। लेकिन आदमी का छोटा सा मन उस अखंड को देख नहीं पाता। और आदमी जितना देख पाता है वह सदा ही खंड होगा। अखंड को जानने के लिए तो हृदय शून्य चाहिए। देखने वाला बिलकुल ही मिट जाय, तो ही दर्शन शुद्ध होगा। जब तक देखने वाला बना है, भीतर कोई देखने की दृष्टि है, तब तक दृष्टि ही चौखटा बन जाएगी :

जैसे कोई खिड़की से झांक कर पूर्णिमा की रात्रि को देखे। खिड़की का चौखटा चांद पर जड़ा हुआ मालूम पड़ता है। चांद पर कोई चौखटा नहीं है, कोई फ्रेम नहीं है, आकाश असीम है। लेकिन खिड़की के भीतर से कोई खड़े होकर देखे तो जितनी खिड़की, उतना ही बड़ा आकाश दिखाई पड़ता है।

इंद्रियों के भीतर से खड़े होकर जो भी देखा गया है, उस पर इंद्रियों का चौखटा जड़ जाता है। जितनी बड़ी इंद्रिय है, उतना ही बड़ा दर्शन है। फिर दृष्टियां हैं भीतर। हर दृष्टि खंड करती है. तोड़ती है। और 'जो है' वह अखंड है इसलिए जो भी हम इंद्रियों से जानेंगे, वह सत्य न होगा, और भी हम मन से जानेंगे वह पूर्ण न होगा। मन अपूर्ण है।

इसलिए जिन्होंने सोच-विचार कर जगत के संबध में कुछ कहा है, उनके कहने में समय सत्य नहीं समाता। उन्होंने जो कहा है, वह सत्य के सम्बन्ध में कम बताता है. उनके सम्बन्ध में ज्यादा बताता है।

इसलिए लाओत्से जैसे ज्ञानी ने कहा है कि सत्य कहा नहीं जा सकता। और कहने से ही झूठ हो जाता है। क्योंकि शब्द का चौखटा बड़ा छोटा है। सत्य का विस्तार अनंत है। क्षुद्र शब्द के भीतर समाने की कोशिश में ही सत्य जड़ हो जाता है। मर जाता है।

यह ऐसे ही है जैसे कोई मुट्ठी में आकाक्ष को भरने चले। कैसे तुम मुट्ठी में आकाश को भरोगे? मुट्ठी स्वयं आकाश में हैं। तुम मुट्ठी में कैसे आकाश को भरोगे? और जितने जोर से तुम मुट्ठी बांधोगे, यह सोचकर कि कहीं आकाश हाथ से निकल न जाय, मुट्ठी न खुल जाये, उतना ही कम आकाश तुम्हारी मुट्ठी में रह जाएगा। जितनी जोर से बंधी मुट्ठी होगी, उतनी ही खाली होगी। उसमें आकाश नहीं होगा। आकाश को मुट्ठी में बांधने का एक ही ढंग है, कि मुट्ठी को तुम बांधना ही मत। खुली मुट्ठी में आकाश होता है।

ऐसे ही खुले मन में सत्य होता है। जहां सब चौखटें गिरा दी गयीं, द्वार, दरवाजे खिड़कियां हटा दी गई। जहां तुम खुले आकाश के नीचे खड़े हो गये, वहां तुम सत्य में होते हो। ध्यान रखना, इसे मैं फिर दोहराता हूं। सत्य को तुम अपने में न समा सकोगे, वह तुमसे बड़ा है। बहुत बड़ा है। अगर चाहते हो कि सत्य के साथ संबंध बन जाये, तो तुम्हें ही सत्य में समा जाना होगा।

इसलिए कबीर कहते हैं···'अवधू गगन-मंडल घर कीजे।' उस शून्य में घर बना लो। तुम ही आकाश में रहने लगो। खोल दो मुट्ठी। आकाश तुम्हारे भीतर भी है, बाहर भी है। तुम बंद न रहो।

तुम जब खुले हो, मुक्त हो, वही अवस्था ध्यान की है। जब मन किसी दृष्टि से नहीं देखता, जब मन किसी धारणा से नहीं देखता, जब मन पहले से ही लिये गये किसी निष्कर्ष की आड़ में खड़ा नहीं होता, जब मन और अस्तित्व के बीच में शास्त्र नहीं होते, शब्द नहीं होते।

धर्म तो है असीम। और जहां-जहां सीमा पाओ वहां-वहां राजनीति है। धर्म तो करता है। धर्म का वास्तविक शत्रु राजनीति है।

विज्ञान तो आज नहीं कल धार्मिक हो सकता है। हो ही जायगा। अगर सत्य की ही खोज है, तो आज नहीं कल धर्म से कितनी देर तक दूर जा सकेगा! और विज्ञान रोज धर्म के निकट आता गया है। जैसे-जैसे विज्ञान ने जाना है, वैसे वैसे उसे भी प्रतीति हुई है, कि धर्म के सत्यों में कुछ सार है। और विज्ञान चाहे आज करीब न भी हो, जो महान वैज्ञानिक है, उनके हृदय में तो वही धुन बजने लगी है, जो महान संतों के हृदय में बजी है।

कबीर के हृदय में जो गूंज है, वही आइन्सटीन के हृदय में हैं। मरते समय आइन्सटीन ने कहा है कि जैसे-जैसे मैंने जाना, वैसे-वैसे संसार का सत्य पदार्थ में

समाप्त मालूम नहीं होता। परमात्मा की छाप जगह-जगह दिखाई पड़ती है।

एक दूसरे बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है, कि जब मैंने अपनी विज्ञान की यात्रा शुरू की थी तो मैं सोचता था पदार्थ ही सब कुछ है। और मैं सोचता था, कि विचार भी पदार्थ का ही एक रूप है। लेकिन अब जब मैं जीवन की अंतिम पड़ाव पर पहुंच रहा हूं, तो दृष्टि पूरी बदल गई है। अब मैं सोचता हूं कि पदार्थ भी विचार का ही एक रूप है। चैतन्य का ही एक ढंग है। और वस्तुएं मुझे अब वस्तुएं नहीं मालूम पड़तीं। विचार के सघन रूप मालूम पड़ती हैं।

आज नहीं तो कल विज्ञान तो धर्म के करीब आ जाएगा। शत्रुता है राजनीति से। वह कभी धर्म के करीब नहीं आ सकती। क्योंकि राजनीति का सारा ढंग तोड़ना है। पृथ्वी तो एक है। कहीं पृथ्वी का चिह्न है, जहां भारत समाप्त होता हो और पाकिस्तान शुरू होता हो? कहीं तुम पृथ्वी की जांच परख करके उस जगह पहुंच जाओ, तुम कह सको कि यहां भारत समाप्त हुआ और पाकिस्तान शुरू हुआ?

नहीं, पृथ्वी की जांच परख से पता न चलेगा। पृथ्वी तो अखंड है। अगर तुम्हें जांच करना हो, तो राजनीतियों के बनाए नक्शे देखने पड़ेंगे। वे झूठे हैं। वे आदमी-निर्मित हैं। पृथ्वी को पता ही नहीं, कहा हिंदुस्तान समाप्त होता है, कहां पाकिस्तान शुरू होता है। हिन्दुस्तान पाकिस्तान में प्रवेश किया हुआ है। पाकिस्तान हिन्दुस्तान में प्रवेश किया हुआ है। सारी पृथ्वी इकट्ठी है।

पृथ्वी ही इकट्ठी है, ऐसा नहीं है। पृथ्वी चांद-तारों से जुड़ी है। अकेला तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। सब इकट्ठा है।

दस करोड़ मील दूर है सूरज पृथ्वी से, लेकिन फूल में तुम जो किरण देखते हो, वह सूरज की किरण का है। अगर सूरज न हो, तो पृथ्वी से रंग खो जाये। पृथ्वी में तुम जहां भी रंग देखते हो, जीवन देखते हो, प्राण देखते हो, वह सब सूरज का है। दस करोड़ मील दूर है। किरण को आने में दस मिनट लग जाते हैं।

और किरण की बड़ी तीव्र गति है। प्रति सैकेंड एक लाख छियासी हजार मील चलती है। सूरज से आने में दस मिनट लग जाते हैं। बड़ा फासला है। लेकिन सूरज तो बहुत करीब है। और तारे हैं। निकटतम तारा है, उससे पृथ्वी तक आने में चार वर्ष लगते हैं किरण को आने को। वही रफ्तार—एक लाख छियासी हजार मील प्रति सैकंड।

उसके बाद तारे हैं, जिससे सौ वर्ष लगते हैं किरण को पृथ्वी तक आने में। सौ वर्ष लगते हैं, हजार लगते हैं, दस हजार वर्ष लगते हैं, करोड़ वर्ष लगते हैं, अरब वर्ष लगते हैं। वैज्ञानिकों उन तारों तक की खोज कर लिए हैं, जो तारों से किरण चली थी जब पृथ्वी नहीं बनी थी और अभी तक पहुंची नहीं है। पृथ्वी को बने चार अरब वर्ष हो गये।

और यह भी अन्त नहीं है। उनके पार भी जगत है। अस्तित्व फैला ही है। फैलता ही चला गया है। इसलिए तो हिन्दुओं ने अस्तित्व को ब्रह्म का नाम दिया है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है, जो फैलता ही चला गया है। जिसका विस्तार होता ही चला गया है। जहां तुम कभी भी ऐसी जगह न आ सकोगे कि कह दो कि विस्तार पूरा हुआ।

ब्रह्म से ज्यादा सुन्दर शब्द अस्तित्व के लिए दुनिया की भाषा में नहीं है। क्योंकि ब्रह्म का अर्थ ही है विस्तीर्ण... और विस्तीर्ण... और विस्तीर्ण होता ही चला गया है। और कहीं कोई सीमा नहीं आती। सब जुड़ा है, संयुक्त है।

तुम्हें दिखाई न पड़े, तुम सूरज से जुड़े हो। अगर सूरज बुझ जाये तुम बुझ जाओगे। ये सब दिये, जो तुम्हारी आंखों में जल रहे हैं, तत्क्षण बुझ जायेंगे। क्योंकि सूरज के बिना पृथ्वी पर जीवन नहीं हो सकता। सूरज के बिना पृथ्वी पर कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ महामृत्यु होगी। फूल नहीं खिलेंगे, फल नहीं लगेंगे, पक्षी गीत नहीं गायेंगे, आंखों के दिये बुझ जायेंगे। एक महान मरघट होगा।

तो सूरज से हम एक क्षण भी दूर नहीं रह सकते। उसकी रोशनी हमें जीवन दे रही है। वह तुम्हारे रोयें-रोयें से जुड़ी है। तुम कहां समाप्त होते हो? तुम सोचते हो चमड़ी पर, तो तुम गलती में हो। क्योंकि सूरज के बिना तो तुम नहीं हो सकते। अगर तुम्हें चमड़ी ही समझनी है, कि तुम्हारी कहां है, तो कम से कम सूरज के पास समझो। वहां तक तुम्हारी चमड़ी जुड़ी है।

तुम्हारी चमड़ी से तुम प्रतिक्षण श्वास ले रहे हो। हजारों छिद्र हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, कि तुम नाक से ही श्वास नहीं ले रहे हो, रोयें-रोयें से श्वास ले रहे हो। असल में रोयें छिद्र हैं श्वास लेने के लिए। अगर तुम्हें नाक से श्वास लेने दिया जाये। और पूरे शरीर पर रंग रोगन पोत दिया जाये, कि सब छिद्र बन्ध हो जायें, तो तुम तीन घंटे में मर जाओगे। नाक खुली रखी जाये, तुम श्वास

जितनी चाहे लेते रहो नांक से लेकिन रोये श्वास न लें तो तीन घंटे में मौत हो जायेगी।

कहां है तुम्हारी चमड़ी की सीमा? हवा के बिना तो तुम क्षण भर न रह सकोगे। हवा तो तुम्हारे जीवन को जगाए है। और हवा का विस्तार पृथ्वी के दो सौ मील चारों तरफ है। अगर तुम्हें अपनी सीमा ही खोजनी है, तो हवा में खोजो। लेकिन तब तुम पृथ्वी से बड़े हो जाते हो।

लेकिन वह हवा भी प्राणवायु से भरी है। क्योंकि सूरज की किरणें प्रतिपाल प्राणवायु पैदा कर रही हैं। तो अगर सीमा बनानी हैं, तो सूरज को बनाओ। लेकिन सूर्य खुद महासूर्यों पर निर्भर है। उससे अगर उसे ज्योति न मिले तो वह भी कभी का बुझ जायेगा।

एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात समझ लेना चाहिए। तीन तरह की चेतना की अनुभूतियां हैं: एक—जब आदमी परतंत्र अनुभव करता है, डिपेन्डेन्ट अनुभव करता है। दो—जब आदमी स्वतंत्र अनुभव करता है, इण्डिपेन्डेन्ट अनुभव करता है। और तीसरी, जो कि श्रेष्ठता है, जब आदमी परस्पर-निर्भर, इंटर डिपेन्डैन्ट अनुभव करता है। वह श्रेष्ठतम अवस्था है।

जब तुम परतंत्र अनुभव करते हो, तब तुम दूसरों के साथ राजनीतिज्ञ के संबंध में जुड़े हो। दूसरा दुश्मन हैं। जब तुम स्वतंत्र अनुभव करते हो, तब तुम दूसरे से बगावत कर दिये हो। स्वतन्त्रता हो, गई हो लेकिन मैत्री नहीं हो पाई है। और दोनों ही अवस्थाएं गलत हैं। क्योंकि न तो कोई परतंत्र है और न कोई स्वतंत्र है। वास्तविकता है—परस्पर-तंत्रता! इंटर डिपेन्डेन्स। हर चीज एक-दूसरे पर निर्भर है।

तुम्हारे बिना वृक्ष न हो सकेगा, वृक्ष के बिना तुम न हो सकोगे। तुम दिन भर श्वास लेते हो। ऑक्सीजन तुम पी जाते हो और कार्बन-डाइआक्साइड तुम हवा में छोड़ देते हो। वृक्ष कार्बन-डाइआक्साइड पीते है और आक्सीजन को छोड़ते हैं। इसलिए तो वृक्षों के पास बैठकर तुम्हें ताजगी मालूम पड़ती है।

और इसलिए तो तुम्हारे सीमेंट कांक्रीट की वस्तुएं मरघट जैसी मालूम पड़ती है, जिसमें वृक्ष खो गये हैं क्योंकि वहां कोई जीवन देने वाला नहीं है। वहां परस्पर-संबंध टूट गया। सीमेंट की सड़क श्वास वापस नहीं लौटती। सीमेंट कांक्रीट की आकाश छूती मंजिले भवन, कुछ भी नहीं लौटाते। मुर्दा हैं।

वृक्ष से लेन-देन है। इधर तुम छोड़ते हो श्वास, वृक्ष पी जाता है। तुम्हारी कार्बन-डाइआक्साईड जो तुम्हारे लिए विषाक्त है, वह वृक्ष के लिए जीवन है। जो वृक्ष के लिये व्यर्थ है आक्सीजन, वह तुम्हारे लिए जीवन है। इसलिए तो वृक्षों के पास बैठकर लगता है कि जीवन में एक बाढ़ आ गई। पहाड़ों पर जाकर लगता है कि जीवन में एक ऊर्जा आ गई। तुम नये हो गये, ताजे हो गये। हरियाली को देखकर ही कुछ भीतर ठंडा हो जाता है, शीतल हो जाता है। तुम्हारी आंखें हरियाली की प्यासी हैं। और आज नहीं कल विज्ञान यह भी खोज लेगा कि हरियाली तुम्हारी आंखों की प्यासी है। क्योंकि अस्तित्व परस्पर-निर्भर है। जब तुम किसी वृक्ष की तरफ भरे प्यार की आंखों से देखते हो, वृक्ष में भी कुछ कंपित होता है।

इसकी खोजबीन शुरू हो गई है। पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक और वैज्ञानिक—बंकर—उसने पौधों पर बड़े प्रयोग किए हैं। और वह कहता है कि जब पौधों के प्रति कोई प्रेम से भरकर आता है, तो पौधा तन-प्राण से नाच उठता है। और इसकी वैज्ञानिक परीक्षा के उपाय हैं।

जैसे तुम्हारा कोई कार्डियोग्राम लेता है डाक्टर, तो तार जोड़ देता है। मशीन ग्राफ बनाती है कि तुम्हारा हृदय कैसा धड़क रहा है। ठीक धड़क रहा है, नहीं ठीक धड़क रहा है? स्वस्थ है या अस्वस्थ है? तुम प्रसन्न हो या दुखी हो? तुम जीवन से भरे हो या मृत्यु की तरफ डूब रहे हो? सारी खबर ग्राफ पर आ जाती है।

ठीक वैसे ही ग्राफ बैकर ने बनाए हैं वृक्षों के। वृक्षों के तार जोड़ देता है। फिर वृक्ष को प्रेम करने वाला व्यक्ति आया और तार खबर देने लगता है, ग्राफ बनाने लगता है कि वृक्ष बहुत प्रसन्न है। बहुत आनंदित है। स्वागत से भरा है। तुम्हारी भाषा नहीं बोलता। अपनी ही भाषा में स्वागत से भरा है। उसका रोआं-रोआं कंप रहा है, पुलकित है, आनंदित है।

और फिर आया एक आदमी, जो वृक्षों का दुश्मन है। कि खाली भी घास पर बैठा हो, तो घास को उखड़ता रहेगा अकारण।

इधर मेरे पास लोग मिलने आते हैं, मुझे बैठना बंद कर देना पड़ा लान में। क्योंकि जो भी लोग, वहां लान पर बैठकर जिनको मैं मिलता था, उनको पूरे वक्त यही काम कि वे घास को उखाड़ रहे हैं। किसलिए उखाड़ रहे हैं? उन्हें

होश ही नहीं है, वे क्या कर रहे हैं। एक बेचैनी है भीतर जो किसी चीज को नष्ट करने में उत्सुक हैं! उनको रोक भी दो, तो थोड़ी देर में वे फिर शुरू कर देंगे। घास उखाड़ने से उन्हें प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन भीतर की बेचैनी जीवन को नष्ट कर रही है। वे सीमेंट के फर्श पर ही बैठने की योग्यता रखते हैं। घास जैसी जीवंत जगह वे खतरनाक हैं।

अगर ऐसा आदमी वृक्ष के पास आता है, तो वृक्ष के प्राण कंप जाते हैं कि दुश्मन आ रहा है। घबड़ाहट शुरू हो जाती है। ग्राफ पर खबर आ जाती है कि वृक्ष बहुत डरा हुआ है। घबड़ा रहा है। परेशान है कि दुश्मन मौजूद है आसपास। तुम जब भरी प्रेम की आंख से देखते हो वृक्ष के आसपास, तो तुम ही हरे नहीं हो जाते, वृक्ष को भी तुम हरियाली दे रहे हो। जीवन का दान दे रहे।

सब जुड़ा है, संयुक्त है। कहीं कोई अंत नहीं आता तुम्हारे होने का। तुम उतने ही बड़े हो, जितना यह बड़ा अस्तित्व है। इससे रत्ती भर कम नहीं। इससे रत्ती भर भी तुमने अपने को कम जाना, तो तुम दुखी रहोगे और नर्क में रहोगे। क्योंकि असत्य में कोई कैसे सुख को उपलब्ध हो सकता हैं? असत्य दुख है, लेकिन सारी राजनीति तुम्हें तोड़ती है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, मैं हिंदू। आदमी होना काफी था। पर्याप्त तो नहीं था बहुत बहुत; लेकिन फिर भी बेहतर था हिंदू होने से। हिंदू तो बीस ही करोड़ हैं। आदमी कम से कम चार अरब। थोड़े तो बड़े होते! लेकिन अगर उसे आदमी से खोजबीन करो तो वह कहता है कि हिन्दू भी मैं राम को मानने वाला हूं। कृष्ण को नहीं मानता।

राजनीति ने और काटा। अब वह पूरा भी नहीं है। बीस करोड़ लोगों के साथ भी उसका तादात्म्य नहीं है। अब दस करोड़ के साथ ही उसका तादात्म्य रह गया है। ऐसा आदमी टूटता जाता है। और फिर हजार पंथ है। घर-घर पंथ है, सम्प्रदाय है। और आदमी छोटा होता जाता है।

कम से कम आदमियत से जुड़ो। आदमियत कोई बहुत बड़ी घटना नहीं है, क्योंकि पृथ्वी बड़ी छोटी है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज··· बहुत मध्यवर्गीय अस्तित्व है उसका। उससे हजारों गुने बड़े सूरज हैं। पृथ्वी का तो कहीं कोई पता ही नहीं है।

और पृथ्वी पर आदमी केवल चार अरब हैं थोड़ा मच्छरों की सोचो, कितने

अरब हैं। आदमी चार अरब हैं। फिर और कीड़े-पतंगों की सोचो। क्या आदमी की हैसियत है? तुम नहीं थे, तब भी मच्छर थे। तुम नहीं रहोगे—अगर राजनीतिज्ञों की चली तो तुम ज्यादा दिन नहीं रह पाओगे। इस सदी के पूरे होते-होते सब समाप्त हो ही जाएगा। मच्छर फिर भी रहेंगे। उनका गीत गूंजता ही रहेगा। कितने प्राणी हैं!

अगर थोड़े बड़े होना है···और छोटे होने से तुम्हें कष्ट हो रहा है। ऐसे, जैसे बड़े आदमी को छोटे बच्चे के कपड़े पहनवा दिए जाये, ऐसी तुम्हारी तकलीफ हो रही है। छोटे का जांघियां पहने खड़े हो। पीड़ा हो रही है, बंधे हो, कैसे हो, लेकिन और छोटे होने की आकांक्षा बनी है।

सब सम्प्रदाय राजनीति है क्योंकि तोड़ते हैं। हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई सब राजनीति है, क्योंकि तोड़ते हैं। धर्म तो जोड़ता है।

तो पहले तो धर्म तुम्हें जोड़ेगा मनुष्यता से, फिर जोड़ेगा प्राण से। प्राण से जुड़ो। और फिर जोड़ेगा अस्तित्व से। तब तुम इतने ही बड़े हो जाओगे जितना बड़ा यह सारा होना है। इससे तुम रत्ती भर छोटे न रहोगे।

तभी तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा है—'अहं ब्रह्मास्मि।' उसने 'मैं' की बात ही नहीं की। मजबूरी है; तुम्हारी भाषा का उपयोग करना पड़ता है। इसलिये अहं शब्द का उपयोग किया—'मैं ब्रह्म हूं।' अन्यथा मैं तो वह है ही नहीं। जब तक 'मैं' है तब तक तो ब्रह्म का अनुभव हो ही नहीं सकता। 'अहंब्रह्मास्मि' का अर्थ है—मैं नहीं हूं, ब्रह्म हूं।

मैं तो रहूंगा तो छोटा ही रहूंगा। तुम्हारी कोई न कोई सीमा रहेगी। तुम कहीं न कहीं समाप्त होओगे। तुम्हारी कोई न कोई परिभाषा होगी। अब अपरिभाष्य के साथ, असीम के साथ एक हो जाना ही परम आनन्द है। सारे ज्ञानी एक ही इशारा कर रहे हैं, कि तुम छोटे से पोखरे हो गए हो। छोटी सी तलैया हो, सड़ रहे हो नाहक, जब कि सागर की तरफ बह सकते हो।

तो पहला काम हैं, बढ़ो; और दुसरा काम है, सागर में डूब जाओ।

और इसकी पीड़ा तुम्हें भी अनुभव होती है। तुम समझ पाओ, न समझ पाओ यह दूसरी बात है। छोटा होना किसे अच्छा लगता है? छोटे-छोटे बच्चों को भी अच्छा नहीं लगता। वे भी बाप के पास कुर्सी पर खड़े हो जाते हैं और जब उनका सिर बाप से ऊपर होता है तो वह कहता है, मैं तुमसे बड़ा। छोटा होना

किसे अच्छा लगता ? छोटे होने में बड़ी पीड़ा है। तुम गरीब हो, अच्छा नहीं लगता है। अमीर होना चाहते हो। क्या कारण है ?

थोड़े बड़े होना चाहते हो। थोड़ा इन्कम का ब्रेकेट बड़ा हो जाये। दस हजार रुपये साल कमाते हो, दस लाख कमाने लगो। थोड़ा तो बड़प्पन आये। एक छोटे से झोंपड़े में रहते हो, बड़े महल में रहने चाहते हो। तुम समझ नहीं पा रहे हो, तुम्हारे भीतर के प्राण क्या कह रहे हैं ? वे यह कह रहे हैं कि थोड़ी जगह चाहिए, थोड़ा बड़ा स्थान चाहिए। थोड़ा फैलने की सुविधा चाहिए। वे यह कह रहे हैं कि छोटे होने में तकलीफ है।

लेकिन तुम समझ नहीं पा रहे हो। क्योंकि कितना ही धन कमा लो, छोटे तुम रहोगे। कितना ही धन पा लो, सीमा बनी रहेगी। सीमा छोटी हो या बड़ी, सीमा, सीमा है। सीमा का कष्ट है। दस हजार की सीमा हो या दस लाख की, कोई फर्क नहीं पड़ता। दस लाख की सीमा बन जाएगी, मन कहेगा दस करोड़। थोड़े बड़े हो जाओ। थोड़ा फैलो।

सब तरफ तुम फैलने की कोशिश कर रहे हो। बिना समझे हर आदमी धार्मिक है। कुछ लोग समझ से धार्मिक हैं, कुछ नासमझी से। जो नासमझी से हैं वे भटकते जरूर है, पहुंचते कहीं भी नहीं। जो समझदारी से चलते हैं वे भटकते नहीं पहुंच जाते हैं। उतनी ही शक्ति भटकने में लगती है, जितनी पहुंचने में लगती है। शायद कम शक्ति से पहुंच जाते हैं। क्योंकि व्यर्थ रास्तों पर नहीं जाते।

अगर तुम अपनी वासनाओं में ठीक झांकोगे तो तुम पाओगे कि सारी वासनाओं का सार एक है कि तुम छोटे नहीं होना चाहते। कोई अगर तुम्हारे पैर पर पैर रख दे तो तुम अकड़ कर खड़े हो जाते हों। रीढ़ सीधी हो जाती है। तुम अपनी पूरी ऊंचाई को प्राप्त कर लेते हो। कहते हो, जानते हो मैं कौन हूं ? तुम बता रहे हो कि मैं इतना छोटा नहीं, कि हर कोई मेरे पैर पर पैर रख कर चला जाये।

तुम यह बताना चाहते हो कि तुम—दूसरे ने तुम्हें जरा ज्यादा छोटा समझ लिया। इतने छोटे तुम नहीं हो। तुम कहते हो, जानते हो मैं कौन हूं ? अकड़ कर चलते हो तुम।

जो तुम नहीं हो वह भी दिखलाते हो तुम। जितना धन तुम्हारे पास नहीं है उतना तुम अफवाह उड़ाते हो कि तुम्हारे पास है। घर में मेहमान आ जाता है,

पड़ोसी का सोफा मांग लाते हो। जो तुम्हारे पास नहीं है वह तुम दिखलाते हो, कि मेरे पास है। घर में रोज रूखा-सूखा खाते हो, मेहमान आता है तो हलवा पूड़ी बनाते हों। यह कोई मेहमान के लिए नहीं है। मेहमान को तो तुम गाली दे रहे हो भीतर की कहां से आ गया ! जिसको तुम गाली दे रहे हो उसको हलुवा पूड़ी क्यों खिलाते हो ? नहीं तुम दिखलाना चाहते हो कि बड़ी मौज चल रही है। आनन्द में जीवन है। बड़ा फैलाव है। कोई कमी नहीं है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के यहां मेहमान आया। पत्नी नाराज। मुल्ला भी दुखी; लेकिन हलवा पुड़ी तो बनाना ही पड़ा। फिर मेहमान को आग्रह कर करके खिलाना भी पड़ा, और भीतर तो गालियां चल रही हैं कि दुष्ट खाये जा रहा है नाही भी नहीं कर रहा है। आखिर मुल्ला ने फिर कहा कि एक पूड़ी और ? उस आदमी ने कहा, नहीं, अब काफी हो गई। अब बस। मुल्ला ने कहा, कहां काफी है ? और गिनती कौन कर रहा है ? अभी बाहर ही तो खाई है। और गिनती कौन कर रहा है ?

मन गिन भी रहा है। मन दिखलाना भी चाह रहा है, कि कोई गिनती नहीं कर रहा है। चाहते हो तुम्हारे सारी वासनाओं में तुम एक ही बात, कि तुम बड़े हो। और हर जगह तुम मुश्किल पाते हो। बड़े हो नहीं पाते। सब जगह सीमा आ जाती है।

धन की एक सीमा है। कितना कमाओगे सत्तर साल में ? कितना ही कमा लो। इस जीवन के सब से बड़े धनी आदमी ने मरते वक्त जो कहा वह याद रखना।

अमेरिका का बहुत बड़ा धनी आदमी हुआ, एंडरु कार्नेगी। दस अरब नगद रुपया छोड़कर मरा। इतनी नगद संपदा किसी के पास न थी। मरते वक्त किसी ने एंडरु कार्नेगी से पूछा कि तुम तो सन्तुष्ट मर रहे होगे ? इतनी विराट संपत्ति, धन छोड़ कर जा रहे हो। एंडरु कार्नेगी ने आंख खोली और कहा, सन्तुष्ट ? मेरे इरादे पूरे सो अरब रुपए छोड़ने के थे। के एक हारा हुआ आदमी हूं। पराजित।'

एंड्रु कार्नेगी गरीब घर में पैदा हुआ। अपनी ही जिन्दगी में उस अकेले आदमी ने अपनी ही मेहनत से दस अरब रुपये इकट्ठे किए। लेकिन सन्तोष नहीं पीड़ा है। क्योंकि दस अरब भी तो सीमा बन जायेगी। दस रुपये से भी सीमा

बनती है, दस अरब से भी सीमा बनती है। थोड़ी बड़ी हुई तो क्या, लेकिन जब तक सीमा है तब तक तुम छोटे ही मालूम पड़ोगे। तब तक पीड़ा जारी रहेगी।

एक ही घड़ी है, जब तुम्हारी पीड़ा बिलकुल बिदा हो जाती है—जिस दिन तुम विराट के साथ एक हो जाते हो। जिसकी कोई सीमा नहीं, वही धर्म में जागरण है। वही ब्रह्म में प्रवेश है। वही खो जाना है सरिता का सागर से।

कबीर उसकी तरफ ही सब तरफ से इशारा कर रहे हैं।

'हम तो एक एक करि जाना।'

कबीर कहते हैं हमने तो एक को एक करके जान लिया। दुई मिटा दी। अब हम दो नहीं है। भक्त जब तक भगवान न हो जाए तब तक दुई बनी रहती है। भक्त चाहे भगवान के चरणों तक भी पहुंच जाए,तो भी तृप्ति नहीं होती।

सच तो यह हैं, अतृप्ति और बढ़ जाती है चरणों के पास आकर। विरह और गहन हो जाता है। संताप और गहन होने लगता है, कि इतने करीब होकर अब और क्या बाधा है, कि छलांग क्यों नहीं लग जाती कि परमात्मा हो जाऊं?

इसलिए हिंदू धर्म जिन ऊंचाइयों को छूता है; उन ऊंचाइयों को इस्लाम, ईसाइयत, यहूदी धर्म नहीं पाते। एकदम रह जाते। ईसाइयत या इस्लाम परमात्मा के चरणों तक तो लाते हैं। लेकिन आखरी छलांग की हिम्मत नहीं हो पाती। आखरी छलांग की हिमत है, परमात्मा हो जाना। उससे कम में राजी मत होना। उससे कम में राजी रहोगे, दुखी रहोगे। परमात्मा के चरणों में रहोगे, लेकिन नर्क में रहोगे। क्योंकि सीमा बनी रहेगी। जब तक तुम परमात्मा ही न हो जाओगे तब तक पीड़ा की रेखा बनी रहेगी।

'हम तो एक एक करि जाना।

कबीर कहते हैं कि हमने तो एक को एक कर जान लिया। अब कोई दुई न बची। अब हम कोई अलग नहीं हैं। अब तू कोई अलग नहीं है।

सूफियों की बड़ी पुरानी कथा है। उस कथा में मैंने थोड़ा सा जोड़ा है। कथा है कि जलालुद्दीन रूमी के एक गीत में, कि प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी आधी रात।

प्रेयसी ने भीतर पूछा 'कौन है?'

प्रेमी ने कहा, मैं हूं तेरा प्रेमी। मेरी पगध्वनि नहीं पहचानी? मेरी आवाज

नहीं पहचानी?'

भीतर सन्नाटा हो गया। कोई उत्तर न आया। प्रेमी बेचैन हुआ। उसने कहा, 'क्या कारण है? द्वार क्यों नहीं खुलते?'

प्रेयसी ने कहा, 'इस घर में दो के लायक जगह नहीं है। या तो मैं, या तू। प्रेम के घर में दो के लिए जगह नहीं हैं। यह द्वार बंद ही रहेगा, जब तक तुम एक होकर न आओ।'

प्रेमी वापस चला गया। दिवस आए गए, ऋतुएं आई गई, वर्ष बीते। बड़ी साधना की उसने। बड़ा अपने को निखरा। शुद्ध किया, आग से गुजरा। कंचन हो गया, फिर एक रात पूर्णिमा की उसने द्वार पर दस्तक दी।

वही सवाल, 'कौन है?'

प्रेमी ने कहा, 'तूही है'

रूमी कहता है, द्वार खुल गए। हिंदू राजी न होंगे। इस्लाम राजी है। यहां तक कहानी जाती है, ठीक है।

इस्लाम कहता है, भक्त कह दे परमात्मा से, कि बस तू ही हैं, मैं नहीं हूं। यात्रा पूरी हो गई। लेकिन थोड़ा गौर से देखोगे तो जब तक तू का भाव है, तब तक मैं का भाव मिट नहीं सकता। क्योंकि तू का अर्थ ही क्या है अगर मैं नहीं? तू में सारा अर्थ ही मैं के कारण है। तू के पहले मैं है। और जब प्रेमी ने कहा 'तू ही हैं,' तब कौन कह रहा है? और तब भीतर तो वह जानना है कि मैं कह रहा हूं। ही तो कहेगा। मैं न होगा, तो भी कौन कहेगा?

इसलिए रूमीं की तो कविता पूरी हो जाती हैं, कि द्वार खुल गए। लेकिन मैं थोड़ी देर द्वार और बंद रखना चाहूंगा। अगर रूमी मुझे मिल जाए तो मैं कहूंगा, कविता को थोड़ा और चलने दो। कहला दो प्रेयसी से कि जब तक तू हैं, तब तक मैं भी मौजूद है। और दो के लिए द्वार न खुल सकेंगे और प्रेमी को तो लौटा दो, अभी कचरा जल गया, कंचन बचा; अब कंचन को भी मिट जाने दो। अशुद्धि गई, शुद्धि बची; अब शुद्धि को भी जाने दो। पाप गया; पुण्य बचा; अब पुण्य को भी जाने दो।

और तब मैं कहता हूं, प्रेमी को आने की जरूरत नहीं, प्रेयसी ही आयेगी। तब उसे वापिस दुबारा बुलाने की जरूरत नहीं दरवाजा खटखटाने के लिए। दो दफा काफी खटखटा चुका। अब प्रेमी न लौटेगा। अब प्रेमी जहां होगा, मनन

होगा। अब प्रेयसी ही उसे खोजती हुई आएगी। प्रेयसी ही उसे आकर आलिंगन कर लेगी।

जिस दिन भक्त बिलकुल मिट जाता है, भगवान आता है। और मैं तुमसे कहता हूं, कि भक्त कैसे भगवान तक पहुंच सकता है? न तो तुम्हें पता है उसका मालूम, न ठिकाना मालूम। पाती भी लिखोगे तो कहां? जाओगे तो कहां? तुम उसे कैसे? वह मिल भी जाये तो प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? रिकॉगिशन कैसे होगा कि यही है? क्योंकि पहले तो कभी जाना नहीं।

नहीं, तुम न जा सकोगे। तुम मिट जाओ, वह आता है। वह तुम्हारे हृदय के द्वार पर खुद ही दस्तक देता है। वह खुद ही आता है। जिस दिन भक्त तैयार है, उस दिन भगवान उसे खोजता चला जाता है। क्योंकि भगवान तो सदा मौजूद ही था। तुम्हारे आसपास ही था। तुम्हें घेरे था। तुम्हारा परिवेश था। तुम्हारी श्वास था। तुम्हारा प्राण था। तुम भरे थे अपने से इतने जादा, कि भीतर कोई जगह न थी। 'अवधू गगन मंडल घर कीजै।'

जब तुम शून्य हो जाओगे, वह उतर आता है। शून्यता में पूर्णता ऐसी ही उतर आती है, जैसे बूंद सागर में खो जाये। तुम शून्य हुए कि पूर्ण होने के अधिकारी हुए। तुम मिटे, कि परमात्मा हुआ।

प्रेयसी खुद ही खोजती हुई पहुंची होगी। किसी वृक्ष के नीचे बैठा देखा होगा प्रेमी को। नाची होगी उसकी चारों तरफ। आलिंगन किया होगा। कहा होगा कि मैं आ गई। अब तो तुम बिलकुल मिट गये। न तू बचा, न मैं बची। दोनों साथ बचती हैं, अगर मैं नहीं? मैं का क्या अर्थ है, अगर मैं नहीं? मैं का क्या अर्थ हैं, अगर तू नहीं?

कबीर कहते है,

'हम तो एक एक करि जाना।'

न वहां कोई मैं है, न वहां कोई तू है। हमने तो एक को बस, एक ही तरफ जान लिया।

'दोई कहे तिनही को दो जख'

जिन्होंने दो कहा, वे नर्क में।

'दोई कहैं तिनहीं को दो जख...'

वह नर्क में है। दो यानी नर्क, एक यानी स्वर्ग।

'...जिन नाहिन पहचाना।'

वे ही दो कहते हैं जिन्होंने पहचाना नहीं। और जो दो कहते हैं, वे गहन नर्क में पड़े रहते हैं।

सीमा नर्क है। बंधे हुए अनुभव होना पीड़ा है। सब तरफ से दबे होना दुख है। कुछ बचा है होने को। नरक है, जब तक सभी न पा लिया गया हो। कुछ भी न बचे बाहर। तुम ऐसे फैल जाओ कि आकाश जैसे ढाक लो सारे अस्तित्व को। कि फूल तुममें खिलें, चांद-तारे तुममें चलें।

स्वामी राम कहा करते थे कि मैंने ही चांद-तारे बनाये। वह मैं ही था जिसने चांद-तारों को पहले छुआ ऊंगली से और जीवन दिया और गति दी। और चांद-तारे मुझमें घूमते हैं। तो लोग समझते थे कि पागल हैं। ज्ञानियों को सदा लोगों ने पागल समझा है। बात ही पागलपन की लगती है।

जब स्वामी राम अमेरिका गये और उन्होंने ये ही बातें वहां कहीं—तो हिंदुस्तान तो पागलों से बहुत परिचित हैं। यहां चल जाती हैं बातें। हजारों साल से पागलों को सुनते-सुनते जो पागल नहीं है, वे भी कम से कम उनकी भाषा से परिचित हो गए। मानते हैं कि सधुक्कड़ी भाषा है। अपनी नहीं, साधुओं की है। कुछ दिमाग फिरे लोगों की है। तभी तो कबीर को कहना पड़ता है, कहै कबीर दिवाना। दिवानों की है पागलों की है, मस्तों की है। मगर हमने इतने दिनों से सुनी है और हमने इतने मस्त पुरुष देखे हैं कि हम नासमझी में भी चाहें स्वीकार न करें लेकिन अस्वीकार भी नहीं करते।

पर अमेरिका की तो हालत बड़ी और है। जब वहां लोगों ने स्वामी राम को कहते सुना, कि मैंने ही चांद तारे चलाये तो लोगों ने समझा यह आदमी बिलकुल पागल है। तो लोग पूछने लगे, 'अपने? और आपमें ही चांद-तारे घूम रहे हैं? तो इस तरह के लोगों को तो पश्चिम में लोग मनोवैज्ञानिक के पास भेज देते हैं चिकित्सा के लिए।

कल ही सांझ एक इटेलियन साधिका मुझसे कह रही थी, कि जबसे उसने ध्यान शुरू किया है, शरीर में एक ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। और जब भी कोई ध्यान की बात उठती है, या परमात्मा की चर्चा उठती है, या जब भी कभी वह मुझे मिलने आती है, या किसी ऐसे आदमी से मिलना हो जाता है जिसके भीतर जीवन के फूल कुछ खिलने शुरू हुआ है या खिल गये हैं, तो उसका सारा शरीर

एक झटके से भरा जाता है, जैसे बिजली की कौन्ध दौड़ गई। उसने कहा, यहां यो सब ठीक था। लोग समझते थे, कुण्डलिनी का जागरण हो रहा है। इटली में क्या करूंगी? अगर वहाँ यह हुआ तो वे मुझे मनोचिकित्सक के पास भेज देंगे। मेरा इलाज करवा देंगे। हो सकता है, बिजली का शाक दिलवा दें। दवा तो वे करवाएंगे ही, कि कुछ गड़बड़ हो गया।

यहां परिचित है, अमेरिका तो बहुत नया है। बच्चों जैसा है। राम ने जब ये बातें कहीं तो लोगों ने समझा कि यह पागल है। और जब राम कहते, तो वे हमेशा अपने लिए बादशाह शब्द का उपयोग करते थे। वे कभी और तरह नहीं बोलते थे। वे कहते थे, बादशाह राम। उन्होंने किताब लिखी तो उन्होंने उस किताब को नाम दिया 'बादशाह राम के छह हुक्मनामे। सिक्स आर्डर्स फ्राम एम्परर राम' हुकमनामे। बादशाह!

खुद अमेरिका का राष्ट्रपति बादशाह राम से मिलने आया था और उसने कहा, और सब तो ठीक है, मगर आप यह बादशाह क्यों कहते हैं? आपके पास दिखाई नहीं पड़ता। राम ने कहा, पहचान लिया बिलकुल। इसलिए अपने को बादशाह कहता हूं कि मेरे पास कोई सीमा नहीं, कुछ भी नहीं। असीम! चांद-तारे मुझमें घूमते हैं। क्योंकि मैं कहीं समाप्त ही नहीं होता। यही मेरी बादशाहत है। बिलकुल ठीक पहचाना।

अमरीकी प्रेसिडेंट कह रहा था, बादशाह वह अपने आपको कहे, जिसके पास कुछ हो। हमारी परिभाषा अलग है। हम समझते हैं जिसके पास कुछ नहीं, उसके पास सब है। जिसने छोड़ा आंगन, आकाश उसका हुआ। जिसने छोड़ा एक घर, सब घर उसके हुए। जिसने यहां गिराई अपनी अस्मिता, सबके भीतर सबके प्राण उसके ही प्राण हो गए।

रामकृष्ण परमहंस को मरने के पहले गले का कैंसर हो गया। तो बड़ा कष्ट था और बड़ा कष्ट था भोजन करने में, पानी भी पीना मुश्किल हो गया था। गले से कोई भी चीज ले जाना कष्ट था। घाव था।

तो विवेकानंद ने एक दिन रामकृष्ण को कहा, कि इतनी पीड़ा शरीर को हो रही है। आप जरा मां को क्यों नहीं कह देते? जगत्जननी को जरा कह दो। तुम्हारी वह सदा से सुनती रही है। इतना ही कह दो कि गले को इतना कष्ट क्यों दे रही हो? फिर भोजन की असुविधा हो गई है।

रामकृष्ण ने कहा, तू कहता हैं तो कह दूंगा। मुझे ख्याल ही न आया। घड़ी भर बाद आंख खोली और खूब हंसने लगे और मां ने कहा, पागल! कब तक इसी कंठ से बंधा रहेगा? सभी कंठों से भोजन कर। बात समझ में आ गई। रामकृष्ण ने कहा, यह कंठ अवरुद्ध ही इसलिए हुआ था कि सभी कंठ मेरे हो जायें। अब मैं तुम्हारे कंठों से भोजन करूंगा।

एक कंठ अवरुद्ध होता है, सभी कंठों के द्वार खुल जाते हैं। यहां एक अस्मिता बुझती है और सारे अस्तित्व की अस्मिता, सारे अस्तित्व का 'मैं-भाव—वही तो परमात्मा है। वही अस्तित्व की अस्मिता तो कृष्ण से बोली है; सर्वधर्मापने परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' सब धर्म छोड़कर तू मेरी शरण आ। यह कौन बोला है? यह कौन है मेरी शरण? यह कोई कृष्ण नहीं है, जो सामने खड़े हैं। यह सारे अस्तित्व की अस्मितता, यह सारे अस्तित्व का मैं बोला है। तुम्हारा मैं बाधा है क्योंकि उसके कारण तुम सारे अस्तित्व के मैं के साथ एकता न साध पाओगे।

रवीन्द्रनाथ ने अपना एक संस्मरण लिखा है, जो मुझे बड़ा ही प्रीतिकर रहा है: एसी पूर्णिमा को रात थी एक, रवीन्द्रनाथ बजरे में थे नदी में। एक छोटा सा दिया जला लिया था। और किताब पढ़ रहे थे। बड़ी टिमटिमाती रोशनी थी। छोटा सा दिया थी। और बाहर पुरा चांद खिला था पूर्णिमा का, रोशनी ही रोशनी थी। लेकिन कमरे के भीतर दिया टिमटिमाता रहा था। उसकी गंदी सी रोशनी सारे कक्ष को गंदा कर रही थी। आधी रात तक पढ़ते रहे। थक गए। दिये को फूंक मार कर बुझा कर किताब बंद की।

चौक गये। खड़े हो गये। नाचने लगे। अनूठा घटा। सोचा भी न था, ऐसा घटा अब तक पीला सा प्रकाश भरा था कमरे में। दिये के बुझाते ही द्वार से, खिड़कियों से, रंध्र-रंध्र से बजरे की, चांद भीतर आ गया और नाचने लगा। रवीन्द्रनाथ नाच उठे।

उस रात उन्होंने अपनी डायरी में लिखा, मैं भी कैसा पागल! पूरा चांद बाहर खड़ा था। अनूठी सुन्दर रात बाहर प्रतीक्षा कर रही है। चांद द्वार पर खड़ा है, खिड़की पर खड़ा है, रंध्र-रंध्र के पास खड़ा है, राह देखता है कब बुझाओगे भीतर का दिया, कि मैं भीतर आऊं। और छोटा सा दिया बाधा बना है और उसकी बजह वे भीतर गंदा प्रकाश भरा है जिसमें आंखें थकती हैं, शीतल

नहीं होती। दिये के बुझते ही सब तरफ से रोशनी दौड़ पड़ी। भीतर जगह खाली हो गई। शून्य हो गई। चांद आ गया नाचता हुआ।

रवीन्द्रनाथ ने कहा, उस दिन मेरे मन में एक द्वार खुल गया, कि जब तक मेरे भीतर अहंकार का दिया जल रहा है तब तक परमात्मा की रोशनी बाहर ही खड़ी रहेगी। जिस दिन यह दिया मैं फूंक मार कर बुझा दूंगा, उसी दिन वह नाचता भीतर आ जायेगा। फिर नाच हीं नाच है। फिर उत्सव ही उत्सव है। फिर इस उत्सव का कोई अंत नहीं आता।

हम तो एक एक करि जाना।

दोई कहे तिनहीं को दोजख, जिन्ह नाहिन पहिचाना।'

जिन्होंने दो कहा, वे नर्क में हैं। कबीर का यह वचन पश्चिम का आधुनिक विचारक ज्यां पाल सार्त्र अगर पढ़े तो राजी होगा। ज्यां पाल सार्त्र का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है, जिसमें उसने कहा है,—'द अदर इस द हेल। दूसरा नरक है। उसके प्रयोजन दूसरे हैं। लेकिन बात तो उसने भी पकड़ ली है। दूसरा नरक है। दूसरे की मौजूदगी नरक है।

तो क्या करें ? क्या अकेले में भाग जायें ? एकांत में हो जायें, जहां दूसरा न हो ? न पत्नी हो, न बेटा हो। बहुतों ने यह प्रयोग किया है। भागे हैं हिमालय की कंदराओं में ताकि अकेले हो जायें। क्योंकि दूसरा नरक है। लेकिन तुम भाग कर भी अकेले न हो पाओगे। मैं तो साथ चला जाएगा। और ध्यान रखो, जहां मैं हूं, वहां तू है। वह सिक्का इकट्ठा है। तुम आधा-आधा छोड़ नहीं सकते। अगर मैं तुम्हारे साथ गया तो तू भी तुम्हारे साथ गया। जल्दी ही तुम अपने को ही दो हिस्सों में बांटकर चर्चा करने लगोगे।

अकेले में लोग अपने से ही बात करने लगते हैं। मैं और तू दोनों ही गये। अकेले में लोग साथ खेलने लगते हैं। खुद ही दोनों तरफ से बाजी बिछा देते हैं। उस तरफ से भी चलते हैं, इस तरफ से भी चलते है। इतना ही नहीं; उस तरफ से भी धोखा देते हैं, इस तरफ से भी धोखा देते हैं। जिसको धोखा दे रहे हो ?

अकेले में लोग कल्पना की मूर्तियों में जीने लगते हैं। उनसे चर्चा करते हैं, बात करते हैं, 'तू' मौजूद हो जाता है।

भीड़ तुम्हारे साथ ही आ जाएगी अगर मैं तुम्हारे साथ गया। क्योंकि मैं तो

केन्द्र है सारी भीड़ का। भीड़ तो परिधि है। तुम जहां जाओगे, तुम भीड़ में रहोगे। तुम अकेले नहीं हो सकते। हिमालय का एकांत शून्य न बनेगा। अकेलापन रहेगा ही। और अकेलापन और एकांत में बड़ा फर्क है। अकेलापन का अर्थ है, लोनलीनेस और एकांत का अर्थ है अलोननेस। अकेलेपन का अर्थ है, कि दूसरे की चाह मौजूद है। इसलिए तो तुम अकेलेपन अनुभव कर रहे हो कि मैं अकेला मैं अकेला। दूसरे की चाह मौजूद है। दूसरे की वासना मौजूद है। तुम चाहते हो कोई आ जाय।

तुम अपनी हिमालय की गुफा के बाहर बैठकर भी रास्ते पर नजर लगाए रखोगे कि शायद कोई यात्री मानसरोवर जाता गुजर जाए। शायद कोई मनुष्य थोड़ी खबर ले आये नीचे के मैदानों की, कि क्या हुआ ? जयप्रकाश नारायण की पूर्ण क्रांति हो पाई कि नहीं ? शायद कोई अखबार का एक टुकड़ा ले आये और तुम वेद वचनों की तरह अखबार को पढ़ लो। मन तुम्हारा नीचे ही भटकता रहेगा मैदानों में, जहां भीड़ है।

रामकृष्ण कहते थे, एक बार बैठे थे मंदिर के बाहर दक्षि[illegible]र में, तो देखा कि एक चील मरे हुए चूहे को ले उड़ी है। अब चील कितने ही ऊपर उड़े, नजर तो उसकी नीचे कचरे-घर में लगी रहती है जहां मरे चूहे पड़े हो, मांस का टुकड़ा पड़ा हो, फेंकी गई मछली पड़ी हो। उड़ती है आकाश में, नजर तो घूरे पर लगी रहेगी दिल्ली में; नजर मरे चूहों पर लगी रहेगी। तुम अपने को तो साथ ले जाओगे। तुम ही तो तुम्हारी नजर भी। तुम ही तो तुम्हारे होने का ढंग हो।

रामकृष्ण ने देखा कि वह चील उड़ रही हैं मरे चूहे को लेकर। और बहुत सी चीजें उस पर झपटा मार रही है। कौए दौड़ गए हैं। बड़ा उत्पात मच गया है आकाश में। वह चील बचने की कोशिश कर रही है। लेकिन और गिद्ध आ गए हैं। और सब तरफ से उसको टोचे जा रहे हैं। वह भागती है, बचना चाहती है। उसके पैरों पर लहू आ गया है। तब क्रोध की अवस्था में वह भी किसी गिद्ध पर झपटी और मुंह से चूहा छूट गया। चूहे के छूटते ही सारा उपद्रव बन्द हो गया। कोई वे चील के पीछे पड़े नहीं थे। बाकी गिद्ध और चीलें और कौवे वे चूहे के पीछे पड़े थे। जैसे ही चूहा छूटा, वे सब चले गए। वे चूहे की तरफ चले गए। अब वह थकी चील वृक्ष पर बैठ गई। रामकृष्ण कहते हैं

कि मुझे लगा, शायद थोड़ी उसे समझ आई होगी । चूहा सारी भीड़ को ले आया था ।

तुम्हारा मैं'''तुम हिमालय चले जाओ, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सब भीड़ आ जाएगी। तुम्हारा 'मैं' भीड़ को खींचता है। तुम 'मैं' को छोड़ दो। बाजार में बैठे रहो, वही हिमालय हो जाएगा। तुम्हारी दुकान तुम्हारी गुफा हो जाएगी। तुम्हारा दफ्तर तुम्हारा मंदिर हो जाएगा। मैं का चूहा भर छूट जाए। फिर कोई चील हमला नहीं करती। फिर कोई गिद्ध तुम पर आकर हमला नहीं करता। तुमने किसी का कुछ लेना-देना नहीं है। वह तुम्हार मैं ही तुम्हारे उपद्रव का कारण है।

तुम्हें कभी किसी ने धक्का मारा? नहीं। तुम्हारे 'मैं' को नीचा दिखाया गया है? किसी ने कभी तुम्हें गाली दी? नहीं। तुम्हारे मैं को गाली दी गई है। किसी ने कभी तुम्हारी स्तुति की? नहीं। तुम्हारे मैं की स्तुति की गई।

जैसे ही मैं गया, सारी भीड़ गिर जाती है निंदकों की, स्तुति करने वालों की, मित्रों की, शत्रुओं की, अपनों की, पराओं की। द अदर इज हेल। सार्त्र कह रहा है—दूसरा नर्क है। लेकिन अगर बहुत गौर से सोचो और थोड़ा गहरे जाओ तो दूसरा इसीलिए है, कि तुम हो। द इगो इज द हेल। गहरे पर विश्लेषण करने पर तो पता चलेगा कि दूसरा तो तुम्हारे कारण है। इसलिए दूसरे को क्या नर्क कहना। वह नर्क मालूम पड़ता है। वस्तुत: मैं ही नर्क है। अहंकार ही नर्क है।

'दो कहे तिन ही को दो जख, जिन नाहिन पहिचाना।
एक पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।

एक ही पावन है; चाहे कैलाश में, चाहे काबा में। एक ही पानी है; चाहे गंगा में, चाहे तुम्हारे घर रखे गंगोदक में।

"एक पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।'

और चाहे छोटे से मिट्टी के दिए में और चाहे महासूर्यों में, एक ही ज्योति है। इस एक को पहचानो। इस एक को जीओ। इस एक में रमो। एक को ही गुनो। इस एक को ही साधो। इस एक को ही ध्यान बनाओ।

"एक पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा।

और मिट्टी एक ही मिट्टी है; जिससे सब तरह के घड़े गढ़े गए हैं। कुम्हार चक्के पर रखता जाता है वही मिट्टी। अलग-अलग रूप देता चला जाता है। रूप का भेद है। नाम का भेद है। मूल का तो जरा भी भेद नहीं है। अस्तित्व का तो जरा भी नहीं है। कोई स्त्री है, कोई पुरुष है। भीतर सब एक हैं। कोई हिन्दू है, कोई तुर्क है। भीतर सब एक हैं।

'एकहि खाक घड़े सब भांड़े।'

और एक ही सिरजनहारा। और एक ही है जो सृज रहा है, रच रहा है।

'जैसे बाढ़ी काष्ठे ही काटे, अगिनि न काटे कोई।

यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है। उन दिनों, कबीर के दिनों तक भी लकड़ी को रगड़ कर अग्नि पैदा की जाती थी। वही एक उपाय था। लकड़ी में अग्नि छिपी है। काष्ठ में अग्नि छिपी है। जब बढ़ई काटता है लकड़ी को, तो लकड़ी ही कटती है, अग्नि नहीं कटती।

कबीर यह कह रहे हैं ऐसे ही तुममें वह एक छिपा है। जब मौत तुम्हें मारती है, तो लकड़ी ही कटती है, अग्नि नहीं कटती। जब बीमारी तुम्हें मारती है, तो लकड़ी को ही पकड़ती है, अग्नि को नहीं पकड़ती। जब जवान बूढ़ा होता है तो लकड़ी ही बूढ़ी होती है, अग्नि बूढ़ी नहीं होती।

वह जो तुममें छिपा है, चाहे तुम्हें पता न हो। क्योंकि तुमने रगड़ा ही नहीं कभी अपने को कि पता हो जाए। जिन्होंने रगड़ा, उन्होंने जाना। रगड़ने का अर्थ है, जिन्होंने थोड़ा साधा, उन्होंने जाना। जिन्होंने भीतर के रूप को बाहर प्रकट कर के देखा, उन्होंने जाना उन्होंने भीतर को अग्नि की पहचान लिया और तब वे जानते हैं, कि सभी लकड़ियों में एक ही अग्नि छिपी है। लकड़ी के रूप अलग-अलग अनेक होंगे। आग का रंग-ढंग एक। आग का स्वभाव गुण एक। जिसने ऊपर-ऊपर से भांडों को पहचान वह शायद सोचता हो, सब अलग-अलग है। जिसने भीतर से पहचाना, ये एक ही मिट्टी के बने हैं।

और मिट्टी के भीतर छिपा हुआ जो पड़ा है, वह थोड़ा समझने जैसा है। लाओत्से ने उसकी बहुत चर्चा की है। लाओत्से कहता है, घड़ा क्या है? मिट्टी की दिवाल घड़ा है, या मिट्टी की दीवाल के भीतर छिपा हुआ शून्य घड़ा है! गड़ा क्या है? मिट्टी की दिवाल तो घड़ा नहीं है क्योंकि मिट्टी की दीवाल में तुम क्या भरोगे! वहां तो पहले से ही भरा हुआ है। घड़े की उपादेयता तो उसके भीतर

छिपे शून्य में है।

लाओत्से कहता है, मकान पर दरवाजा लगा है। दीवाल मकान है या दीवाल के भीतर जो खाली जगह है, वह मकान है! क्योंकि दीवाल में तो कैसे रहोगे। रहता तो आदमी खाली जगह में है, भीतर की रिक्तता में है। दीवाल तो केवल रिक्तता के चारों तरफ खड़ी है सुरक्षा की तरह।

रहता तो आदमी आकाश में है; चाहे बाहर रहे; चाहे भीतर रहे।

आकाश एक ही है। बाहर भी वही, भीतर भी वही। क्या तुम्हारे घर के आकाश का रूप बदल गया, क्योंकि तुम्हारे घर के ढांचे में समा गया? क्या झोंपड़ी का आकाश गरीब होता है और महल का आकाश अमीर? क्या झोंपड़ी के आकाश और महल के आकाश में गुणधर्म में कोई भेद होता है? हां, भेद दीवाल का है। वहां घासफूस की दीवाल है, वहां पत्थर की दीवाल होगी महलों में। दीवाल का फर्क होगा लेकिन भीतर के शून्य का तो कोई फर्क नहीं। भीतर का शून्य तो एक है।

तुम्हारी नजर अगर रूप पर लगी है तो फर्क दिखाई पड़ेगा। तब एक तुम राजनीति में जीओगे और राजनीति में मरोगे। अगर तुम्हारी नजर भीतर गई तो अरूप दिखाई पड़ेगा।

मैं अमेरिका के एक नीग्रो विचारक की पुस्तक पढ़ रहा था। बड़ा हैरान हुआ मैं। बीसवीं सदी में ऐसी घटनायें घटती हैं। यह नीग्रो विचारक जेल में बन्द था। कुछ जेल में उपाय नहीं रह जाता। काम करने को कुछ नहीं, पढ़ने को कुछ नहीं, काली टोकरी में पड़े रहना···पड़े रहना। और फिर राजनीतिज्ञ था। अकेला पड़ा पड़ा बेचैन हो गया। मन में वासनायें उठती। तो किसी दूसरे कैदी ने एक फिल्म अभिनेत्री का चित्र दे दिया। उसने अपनी दीवाल पर चिपका लिया। ऐसा कभी-कभी उसे देखता। सुन्दर स्त्री का चित्र। ऐसा सभी कैदी लगाये रखते हैं।

कैदियों को हम छोड़ दें, लोग अपने घरों में लगाए हुए हैं। जिनको हम सज्जन कहें। वे भी फिल्म अभिनेत्री-अभिनेताओं के चित्र घर में लगाये हुए हैं। सज्जन, तो दुर्जन का तो कहना ही क्या!

लेकिन कठिनाई तो आई तब, जब पहरेदार ने संतरी ने आकर उसका दरवाजा ठोका और कहा कि हटाओ यह चित्र। यह दीवाल पर नहीं लगा सकते। वह हैरान हुआ। उसने कहा, लेकिन क्यों? सभी कैदी लगाये हुए हैं और किसी के दीवाल पर से नहीं हटाया जा रहा है। उस सैनिक ने कहा, यह सवाल नहीं है। अगर तुम लगाना चाहो, तो किसी नीग्रो अभिनेत्री का चित्र लगा सकते हो गोरी औरत का चित्र नहीं लगा सकते।

चित्र गोरी औरत का अलग, काली औरत का अलग! काले होकर और गोरी औरत का चित्र लगाये हो? अलग करो उसको। यह गोरे लोगों का अपमान है। तुम्हें अगर लगाना है, तो किसी काली औरत का चित्र लगा लो। चित्र में भी फर्क है। कागज का टुकड़ा! थोड़ी सी स्याही उस पर पड़ी है। कोई गोरी स्त्री बन गई है, कोई काली स्त्री बन गई है। चित्र में भी भेद है। मूढ़ता की सीमा नहीं है। मूढ़ता भी बड़ी असीम है। जगत में दो ही चीजें असीम मालूम पड़ती है : एक परमात्मा का विस्तार और एक मूढ़ता का विस्तार।

अगर तुम रूप देखोगे तो कोई गोरा है, कोई काला है, कोई सुन्दर हैं, तो कोई कुरूप है, कोई जवान है कोई बूढ़ा है। लेकिन अगर तुम अरूप देखोगे तो वह तो एक ही है।

"जैसे बाढ़ी काष्ठ हि काटे, अगनि न काटे कोई।'

जैसे बढ़ई लकड़ी को तो काट सकता है ऐसे ही मौत तुम्हें भी काट सकती है, तुम्हारे रूप को; तुम्हारे अरूप को नहीं।

'सब घटि अंतर तू ही व्यापक, धरे सरूपै सोई।'

और सभी घड़ी के भीतर, सभी घंटों के भीतर तू ही व्यापक है। शून्य आकाश की तरह तू ही छाया हुआ है। तूने ही सब रूप घेरे। सब तेरी लीला है। कितने ढंग की लहरें उठती हैं सागर में, कभी हिसाब लगाया? छोटी, बड़ी, विराट, उत्तुंग, कितने ढंग, कितने रूप! लेकिन एक ही सागर सब रूप धरता है। लहरों को देखकर भ्रांति पैदा नहीं होती तुम्हें एक ही सागर छोटी लहर से, बड़ी लहर में। एक ही परमात्मा गरीब में, अमीर में। एक ही परमात्मा गरीब सुन्दर में, कुरूप में। एक ही परमात्मा छोटे में, बड़े में। एक ही परमात्मा बुद्धिमान में, बुद्धू में। एक ही परमात्मा पुण्यात्मा में, पापी में···'धरे स्वरूपे सोई।'

'माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे को गरवाना।"

माया का अर्थ है, असीम को सीमित जानना। सत्य को बंधा हुआ जानना;

सत्य को सिद्धांत की तरह जानना। अरूप को रूप की तरह जानना बाहर की परिधि को भीतर के केन्द्र की तरह जानना, माया है। माया का अर्थ है, लहरों को सागर समझ लेना।

'माया मोहे अर्थ देखि करि काहे को गरबाना।'

और फिर तुम इतने अकड़े फिर रहे हो, इतने फूले-फूले फिर रहे हो, कुछ हाथ नहीं सिवाय राख के। अकड़ने योग्य कुछ भी नहीं है। पास कुछ भी नहीं। भिखारी हो बिलकुल। लेकिन भिखारी के पात्र में भी पड़े दस-पांच पैसे बजते रहते हैं। उन पर ही वह अकड़ता है। वह भी समझता है, मैं कुछ हूं।

क्या है तुम्हारे पास? अगर तुम रूप से ही बंधकर जीओगे और नाम से ही बंधकर जीओगे, तुम्हारा सब गर्व व्यर्थ है। गर्व योग्य कुछ भी नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है। तुम्हारे पास गर्व-योग्य कुछ भी नहीं है और तुम भयंकर गर्व से भरे हो। और जिनके पास गर्व-योग्य कुछ है, जो परमात्मा को पा लेते हैं, वे बिलकुल ही गर्व-शून्य हो जाते हैं। यह बड़ा विरोधाभास है। जिनके पास कुछ नहीं, वे अकड़े फिर रहे हैं और जिनके पास सब कुछ है, वे विनम्र हो जाते हैं। मगर इस विरोधाभास का भी विज्ञान है। और वह विज्ञान समझ लेने जैसा है। यह विरोधाभास बड़ा महत्वपूर्ण हैं। जिनके पास कुछ नहीं, वे क्यों गर्व से अकड़े फिरते हैं! इस गर्व में ही वे अपनी दीनता को छिपाते हैं। इस अकड़ में ही वे अपने को रमाते हैं, भुलाते हैं कि है।

मुल्ला नसरुद्दीन मेरे साथ एक यात्रा पर था। अचानक वह चौंककर खड़ा हो गया और उसने कहा, मालूम होता है मेरा टिकट खो गया। और न केवल टिकट खो गया है मेरा, पैसे भी उसमें मैंने रख छोड़े थे, वह मनीबेग भी खो गया। टिकट और पैसे सब साथ ही साथ था। मैंने कहा कि ठीक से तुम पहले अपने कपड़ों में देख लो।

उसने बहुत खीसे बना रखे हैं भिन्न-भिन्न तरह की चीजें रखने के लिए। सब खीसे देख डाले एक दफा दो दफा। लेकिन मैंने गौर किया, कि एक खीसा जो उसके कोट के ऊपर छाती पर है, वह उसको छोड़ रहा है। वह उस तरफ जाता ही नहीं। दूसरे खीसे दो-दो तीन बार! तो मैंने कहा कहा, नसरुद्दीन, तुम इसे क्यों भूले जा रहे हो!

उसने कहा, कि इसकी बात ही मत उठाओ। भूल नहीं रहा हूं। भली तरह याद है। तो मैंने कहा, उसको क्यों नहीं देख लेते! उसने कहा, उसी का तो सहारा है। एक आशा! अगर उसको भी देखा और न पाया...मारे गये! उसको सम्हाले हूं। उसको मैं न देख सकूंगा। उसमें हिम्मत नहीं पड़ती देखने की। उसी में आशा का एक सेतु बचा है। एक ख्याल—शायद उसमें हो। अगर पक्का हो गया कि उसमें भी नहीं है तो गये।

यह ठीक कह रहा है। यही मनुष्य का मनोविज्ञान है। तुम्हारे पास है नहीं। गर्व में तुम छिपाये हो। इस बात को तुम सूत्र समझ लो, कि आदमी जिस बात का गर्व करता हो, उसी बात में हीन होगा। वही उसकी हीनता की ग्रंथि है वही उसकी इन्फीरियारिटी है। अगर एक आदमी अकड़ कर चलता है कि उसके पास बड़ी सुन्दर देह है तो तुम पक्का समझ लेना उसको शक है। और उसके भीतर भय है, कि उसके पास सुन्दर देह है नहीं। और इसके पहले कि कोई कहे, वह घोषणा कर देना चाहता है, कि मैं एक सुन्दर आदमी हूं।

जिसके पास डर है कि बुद्धि नहीं है, अपनी वह बुद्धि को दिखाता फिरता कंठस्थ कर लेता हैं कुछ बातें। उनको दुहरा देता है चार आदमियों के सामने रोब बन जाये, कि कुछ जानता है। उसको जानने में शक है। उसका ज्ञान सुनिश्चित नहीं। उसने जाना नहीं है। वह केवल जानने का ढोंग कर रहा है।

कुरुप स्त्रियां ज्यादा गहने पहने हुए मिलेंगी। सुंदर स्त्री को गहने की कोई जरूरत नहीं। कुरुप स्त्री अपनी कुरुपता को ढाक रही हैं गहनों से। कुरुप स्त्रियां बहुमूल्य वस्त्रों में ढकी हुई मिलेंगी। हीरे-जवाहरात में ही ढाक कर वे अपने को किसी तरह सुन्दर होने की भ्रांति दिला पाती हैं। सुन्दर स्त्री को कोई जरूरत नहीं है। सुन्दर स्त्री को पता ही नहीं होता, कि सौन्दर्य की घोषणा करनी है। घोषणा तो गरीब करता है। जिसके पास है, वह तो चुप रहता है। जो जानते हैं वे जान लेंगे। जो नहीं जानते, वे घोषणा से भी नहीं जानेंगे। घोषणा क्या करनी है? ज्ञानी विनम्र हो जाता है। पंडित गरूर से भर जाता है। धनी सादगी से जीने लगता है। गरीब सादगी से नहीं जी सकता सिर्फ धनी सादगी से जी सकता है।

मैंने सुना है हेनरी फोर्ड इंग्लैन्ड आया। तो उसके आने के पहले अखबारों में फोटो छपे थे। तो हर कोई उसे जानता था। जगद्विख्यात आदमी था। उसने

आकर एअरपोर्ट के इनक्वायरी दफ्तर में पूछा, कि यहां सस्ते से सस्ता होटल कौन सा है? उस आदमी ने गौर से देखा कि आदमी तो वही मालूम पड़ता है। सुबह ही तो अखबार में फोटो देखी है, हेनरी फोर्ड की। उसने कहा, माफ करिये। क्या आप हेनरी फोर्ड हैं। सुबह आपका अखबार में फोटो देखा। उसने कहा कि जी! उस आदमी ने कहा, कि हेनरी फोर्ड होकर आप सस्ता होटल खोज रहे हैं! तो उसने कहा, क्योंकि मैं हेनरी फोर्ड हूं, सस्ते में रहूं कि महंगे में, कोई फर्क नहीं पड़ता। हेनरी फोर्ड है। सारी दुनिया जानती है।

उस आदमी ने कहा कि आपके लड़के आते हैं। वे तो हमेशा ऊंचा होटल खोजते हैं। उसने कहा, उनको अभी भरोसा नहीं है। मैं आस्वस्त हूं। उनको अभी भी भरोसा नहीं। कमाया मैंने है। वे तो मुफ्तखोर हैं। आश्वस्त हो भी कैसे सकते हैं? कमाई बाप की है। कमाई जिसकी है, उसका बल है। तो वे दिखलाना चाहते हैं। बड़े से बड़ा होटल! अमीर आदमी सादगी से रहने लगता है।

मैंने सुना है कि ऐसा हुआ, कि हेनरी फोर्ड और फायर स्टोन कंपनी का प्रथम मालिक फायर स्टोन, दोनों; और एक कवि हेनरी वॉलेस तीनों एक पुरानी हेनरी फोर्ड की पुरानी कार में एक यात्रा पर गये थे। बीच में एक गांव पर पेट्रोल भरवाने के लिए रुके। तो हेनरी फोर्ड खुद ही गाड़ी चला रहा था। पीछे फायर स्टोन बैठा था और वॉलेस बैठा था, जो कवि था। तीनों की बड़ी दाढ़ी और तीनों बड़े सम्भ्रांत व्यक्ति।

हेनरी फोर्ड ने ऐसे ही बात की बात में, जो आदमी पेट्रोल भरने आया उसको कहा, कि तुम सोच भी नहीं सकते कि तुम किसकी गाड़ी में पेट्रोल भर रहे हो? मैं हेनरी फोर्ड हूं। हेनरी फोर्ड यानी सारी दुनिया की मोटरों का मालिक।

उस आदमी ने ऐसे ही गौर से देखा, और कहा, हूं! उसको भरोसा नहीं आया कि हेनरी फोर्ड यहां क्या मरने आयेंगे, इस छोटे गांव में? और अगर हेनरी फोर्ड ही है, तो बताने की क्या जरूरत? वह अपना पेट्रोल भरता रहा। हेनरी को थोड़ी हैरानी हुई, कि उसने कुछ भी नहीं कहा। उसने कहा, शायद तुम्हें पता न हो कि मेरे पीछे जो बैठे हैं वे फायर स्टोन हैं—फायर स्टान टायरों के मालिक। उस आदमी ने पीछे भी गौर से देखा और जोर से का हूं! और जैसे ही हेनरी फोर्ड ने कहा कि तुम्हें कल्पना भी नहीं हो सकती कि तीसरा आदमी कौन है।

इस आदमी ने नीचे पड़ा लोहे का डंडा उठाया और कहा कि तुम मुझसे यह मत कहना, कि ये ही परमात्मा है जिन्होंने दुनिया बनाई। सिर फोड़ दूंगा। सभी मौजूद है! एक परमात्मा ही भर मौजूद नहीं है समझो।

हेनरी फोर्ड इतना सादा आदमी था, कि उसके कपड़े देख कर कोई पहचान नहीं सकता था कि हेनरी फोर्ड है; न उसकी कार देख कर। क्योंकि वह पहला मॉडल— टी मॉडल; जो उसने बनाया था, उसी में यात्रा करता रहा जिंदगी भर। अच्छे मॉडल बने, अच्छी कारें आईं, लेकिन हेनरी फोर्ड अपने टी मॉडल में चलता रहा।

और साधु जैसा लगता था। इसीलिए तो भरोसा नहीं आया कि हेनरी फोर्ड इस गांव में क्या करेंगे? और फिर यह वेषभूषा। सांताक्लॉज हो सकते हैं लेकिन हेनरी फोर्ड?

सीधा आदमी था। धनी आदमी सादगी से भर जाता है। कुछ आश्चर्य नहीं कि महावीर बुद्ध राजपुत्र होकर भिखारी हो गये। सिर्फ राजपुत्र ही भिखारी हो सकते हैं। भिखारी तो राजपुत्र होना चाहता है। जो तुम नहीं हो वह तुम होना चाहते हो। जो तुम हो, वह होने की आकांक्षा चली जाती है। आदमी इसीलिए तो इतना गर्वाया फिरता है कि जो-जो उसमें नहीं हैं, वह उसकी खबर देता है। और उसके भीतर घाव छिपे हैं गर्व के।

जिस चीज में आदमी गर्व करे, तुम समझ लेना कि वहां उसकी हीनता की ग्रंथि है। उसको तुम जरा छुओगे तुम पाओगे, भीतर से घाव निकल आया, मवाद बहने लगी। वह क्रोधित हो जाएगा। पंडित के ज्ञान पर शक मत करना; अन्यथा वह झगड़ने को तैयार हो जाएगा, विवाद पर उतारू हो जाएगा। शिष्टाचार वहीं है। चुपचाप कह देना, कि निश्चित। आप जैसा धनी और कौन?

जो तुम्हारे पास है, तुम उसकी घोषणा नहीं करते। 'माया मोह अर्थ देखि करि काहे कूं गरवाना, भयभीत आदमी बहादुरी की बातें करता है। भयभीत आदमी हमेशा दावेदारी करता है कि मैं बड़ा वीर पुरुष हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत भयभीत आदमी है। अंधेरे में जाने में डरता है। अंधेरे में भी जाये तो पत्नी को लालटेन लेकर आगे कर लेता है। घर में उसके चोरी हुई। तो चोर की शिनाख्त करनी थी। तो अदालत में मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम जाग गये थे जब चोरी हुई? तो उसने कहा कि बिलकुल जाग गया था।

'तुम सीढ़ियों से नीचे उतर कर देखने आये थे कि नीचे चोर क्या कर रहा है?'

'बिलकुल आया था।'

'तुम उसका चेहरा पहचान सकते हो ?'
'नसरुद्दीन ने कहा, 'बिलकुल नहीं।'
'तुमने उसको देखा था ?'
नसरुद्दीन ने कहा, कि देख नहीं पाया।
'तुम जागे, तुम नीचे आए; उस वक्त यह आदमी मौजूद था ?
'था।'
तो मजिस्ट्रेट ने कहा, यह तो बड़ी तुम पहेली बता रहे हो।

तुम देख क्यों नहीं पाए ? लालटेन पास थी। लालटेन भी थी। तो उसने कहा, लालटेन मेरी पत्नी के हाथ में थी। मैं पत्नी के पीछे था इसलिए देख नहीं पाया।

यह डरा हुआ आदमी है। एक होटल में बैठकर लोग गपशप कह रहे थे। और एक सिपाही, जो अभी-अभी युद्ध से लौटा था, वह कह रहा था कि मैंने इस युद्ध में न मालूम कितने अनगिनत आदमी मार डाले। मैंने गाजर मूली की तरह गरदन काटी। नसरुद्दीन ने कहा, ठहरो; ऐसा एक समय मेरे जीवन में भी आया था। आज से बीस साल पहले जब मैं जवान था, मैं भी युद्ध में गया था और एक दिन गिनती मैं भी नहीं बता सकता; न मालूम कितने लोगों के पैर मैंने काट दिए बिलकुल घासपात की तरह।

इस सैनिक को वैसे ही क्रोध आया था। बीच में उसने टोका और अपनी बहादुरी बताने लगा। उसने कहा कि ठैर ? हमने बहुत बहादुरी के किस्मे सुने हैं। मगर लोग सिर काटते हैं पैर नहीं? नसरुद्दीन ने कहा सिर तो मेरे से पहले ही कोई काट चुका था। जो मिला, हमने गाजर मूली की तरह काट दिया।

लेकिन भयभीत आदमी हिंमत की बातें करता रहता है। यह हिंमत वह अपने को दिला रहा है। तुम भ्रांति में मत पड़ना। वह तुम्हें कुछ नहीं कह रहा है। वह सिर्फ अपने को छिपा रहा है। वह अपनी नग्नता को ढांक रहा है। वह अपनी नग्नता पर वस्त्र ओढ़ रहा है। वह अपने घावों को छिपा रहा है। इसलिए तो जो तुम्हारे पास नहीं उसका तुम गर्व करते हो। और जिसके पास सब है, उसका गर्व खो जाता है। घोषणा क्या करनी है ? किसकी घोषणा करनी है ? और जो है, वह इतना बड़ा है कि सब घोषणाओं से छोटा पड़ेगा। परमात्मा को पाने वाला गर्व करे, समझ में आता है। लेकिन वैसा आदमी बिलकुल विनम्र हो जाता है। और जिनके पास कुछ नहीं, जो भिखारी हैं उनके गर्व की कोई सीमा नहीं।

'निर्भय भया कछु नहीं व्यापे, कहे कबीर दिवाना।'

और जिसने एक को एक करके जान लिया वह निर्भय हो जाता है। उसे फिर

कोई चीज नहीं व्यापती। मौत भी उसके द्वार पर खड़ी रहे, तो अन्तर नहीं पड़ता। सारे संसार की सम्पदा उसे लुभाये तो लोभ पैदा नहीं होता। मौत खड़ी हो, भय पैदा नहीं होता। सारा संसार निंदा करे, अपमान करे तो क्रोध पैदा नहीं होता।

और सारा जगत स्तुतियों से भर जाये; आरती उतारे तो भी उसमें गर्व की धारणा पैदा नहीं होती। अहंकार निर्मित नहीं होता।

'निर्भय भया कछु नहीं व्यापे, कहे कबीर दिवाना।'

और कबीर पागल कहता है कि हम तो एक एक करि जाना। और उसको जानकर हम निर्भय हो गये। सारा भय मिट गया।

भय क्या है ? अगर भय के मूल में उतरो तो एक ही भय है कि तुम्हें मिटना पड़ेगा। और तो कोई भय नहीं है। दूसरे भय भी इसी भय की छायायें हैं।

दिवाला निकल जाये, तो भय लगता है दिवाले के साथ तुम मिटोगे। पत्नी छोड़कर चली जाएगी तो भय लगता है क्योंकि पत्नी तुम्हारा आधा जीवन हो गई। तुम टूट जाओगे आधे। लड़का मर जाएगा तो भय लगता है क्योंकि उसके सहारे तो भविष्य की महत्वाकांक्षा खड़ी है। लड़का मर जाएगा तो भविष्य मिट जाएगा तुम्हारा। वही तुम्हारा सेतु है। आगे यात्रा तुम उसी के कंधों पर करने वाले हो। भयभीत हो।

लेकिन सारा भय एक ही भय का विस्तार है। अलग-अलग छबियां हैं लेकिन एक ही का विस्तार है। वह भय है मृत्यु का। तुम मरोगे, मिटोगे। मृत्यु एक मात्र भय है।

जिसने एक को जान लिया उसकी मृत्यु समाप्त हो गई। क्योंकि वह एक कभी मिटता नहीं। लहरें मिटती हैं। सागर कभी मिटता नहीं। नदियां खो जाती हैं, सागर कभी खोता नहीं। वृक्ष आते हैं, पशु-पक्षी पैदा होते हैं, मनुष्य निर्मित होता हैं, सब होता है। जो आते हैं, विदा हो जाते हैं। लेकिन जीवन की धारा अखंड अजस्त्र बही जाती है।

तुम मिटोगे, जीवन कभी नहीं मिटता। तुम मरोगे, जीवन कभी नहीं मरता, अगर तुमने अपने को इतना ही समझा जितना तुम दिखाई पड़ते हो दर्पण में, तो तुम डरोगे। क्योंकि यह मरेगा, जो दर्पण में दिखता है। यह तो बढ़ई काट देगा। यह काष्ठ है। दर्पण में आग तो दिखाई नहीं पड़ती, जो कष्ठ में छिपी है। उसे तो तुम रगड़ोगे ध्यान में, समाधि में, तो प्रकट होगी। और जिस दिन तुम्हें भीतर की लपट दिख जाएगी, तब तुम कहोगे चलाओ कितने ही आरे, लकड़ी कटेगी, मैं नहीं कटूंगा।

इसलिए तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'ना हन्यते हन्यमाने शरीरे'। शरीर

कटेगा फिर भी वह नहीं कटता। 'नैनं छिदंति शस्त्राणि नैनं दहती पावकः।' न तो मुझे शास्त्र छेद सकते हैं और न मुझे आग जला सकती है। शरीर ही कटेगा, मैं नहीं कटता हूं। अर्जुन, तू भी नहीं कटता है। शरीर ही कटेगा। ये जो युद्ध के मैदान में आकर खड़े हो गए लोग हैं, इनकी काष्ठ की देह कटेगी; अग्नि नहीं कटती।

'जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटे अगनि न काटे कोई।
सब घट अंतर तू ही व्यापक, धरे सरूपे सोई।
निर्भय भया कछु नहीं व्यापे, कहै कबीर दिवाना।'

और जब तुम्हें यह दिख गया कि भीतर की ज्योति अखंड है, भीतर के प्राण शाश्वत सनातन हैं। दिया मिट जाएगा, ज्योति नहीं मिटेगी। शरीर गिरेगा, अशरीरी सदा रहेगा। तुम्हारी सीमा खो जाएगी, लहर की सीमा खोएगी ही, लेकिन लहर में छिपा सागर सदा है...सदा है सदा है।

जिसने इसे पहचान लिया, जिसे थोड़ी भी भनक मिल गई इस भीतर की छिपी अग्नि की, उसका भय मिट गया। मौत को आलिंगन कर लेगा खुद ही। वह मौत को बुला लाएगा घर कि आ जाओ। क्योंकि काष्ट ही कटेगा, शरीर ही मिटेगा, मेरा अब मिटना नहीं है। मौत जब उसका आलिंगन करेगी तब भी वह अमृत का ही अनुभव करेगा। यह मौत की घड़ी में भी अमृत की रसधार बरसती रहेगी। उसके अमृत को नहीं छीना जा सकता।

जीवन अजस्त्र अखंड गंगा है। वह बहती रहती है। घाट बदल जाते हैं, तीर्थयात्री बदल जाते हैं, मन्दिर बनते हैं तट पर, गिर जाते हैं, खंडहर शेष रह जाते हैं। जितने लोग आए और गए, गंगा बहती रहती है। जीवन, गंगा की धारा है। तुम अपने को अलग करके जानोगे, भयभीत रहोगे। तुम उस एक के साथ अपने को एक जान लोगे, अभय फलित हो जाएगा।

ब्रह्मानुभव की छाया है अभय। और ब्रह्म के अनुभव बिना अभय कभी पैदा नहीं होता। तुम कितनी ही घोषणा करो अपने निर्भय होने की, तुम डरे हुए हो। कायर की तरह तुम भीतर कंप रहे हो। तुम कितने ही खड्ग, कृपण हाथ में रखो, तुम्हारे भय ने ही उन्हें संभाला है।

जैसे ही तुम जान लोगे मृत्यु मिटती नहीं; कुछ मिटता ही नहीं। जीवन मिट कैसे सकता है? जो है, वह है। वह नहीं कैसे हो सकता है? रूप मिटते हैं। रूप आते जाते हैं। नाम बदल जाते हैं। सत्ता बनी रहती है।

'हम तो एक एक करि जाना।
निर्भय भया कछु नहीं व्यापे, कहै कबीर दिवाना।'

☐

ओशो रजनीश का हिन्दी साहित्य

पु०—पुस्तिका	सा०—सामान्य संस्करण
पा०—पाकेट बुक	डी०—डीलक्स संस्करण
पे०—पेपरबैक	वि०—विशेष राज संस्करण

उपनिषद

	रुपये
सर्वसार उपनिषद् डी०	
सर्वसार उपनिषद् सा०	20·00
कैवल्य उपनिषद् डी०	
कैवल्य उपनिषद् सा०	20·00
अध्यात्म उपनिषद् डी०	37·00
अध्यात्म उपनिषद् सा०	25·00
कठोपनिषद् डी०	35·00
असतो मा सद्गमय सा०	12·00
ईशावास्योपनिषद् सा०	
निर्वाण उपनिषद् डी०	
आत्म-पूजा उपनिषद् डी०	
आत्म-पूजा उपनिषद् भाग 1 पा०	3·00
आत्म-पूजा उपनिषद् भाग 2 पा०	3·00
आत्म-पूजा उपनिषद् भाग 3 पा०	3·00
केनोपनिषद् भाग 1 पा०	
केनोपनिषद् भाग 2 पा०	

कृष्ण

गीता-दर्शन अध्याय 1—2 डी०	32·00
गीता-दर्शन अध्याय 3 सा० डी०	12·00
गीता-दर्शन अध्याय 3 पे०	

रुपये

गीता-दर्शन अध्याय 4 डी०
गीता-दर्शन अध्याय 4—5 डी० 32·00
गीता दर्शन अध्याय 6 डी० 32·00
गीता-दर्शन अध्याय 7—8 डी० 32·00
गीता-दर्शन अध्याय 8 सा० 12·00
गीता-दर्शन अध्याय 9—10 डी० 32·00
गीता-दर्शन अध्याय 10 सा० 17·00
गीता-दर्शन अध्याय 10 डी० 25·00
गीता-दर्शन अध्याय 11 पे० 12·00
गीता-दर्शन अध्याय 11 सा०
गीता-दर्शन अध्याय 12 सा०
गीता-दर्शन अध्याय 12 डी० 25·00
गीता-दर्शन अध्याय 13—14 सा०
गीता-दर्शन अध्याय 13—14 डी० 40·00
गीया-दर्शन अध्याय 15—16 डी० 30·00
गीता-दर्शन अध्याय 15—16 सा०
गीता-दर्शन अध्याय 17 डी० 30·00
गीता-दर्शन अध्याय 17 सा०
गीता-दर्शन अध्याय 18 डी० 50·00
गीता-दर्शन अध्याय 18 सा० 30 30
कृष्ण : मेरी दृष्टि में डी०
कृष्ण : मेरी दृष्टि में भाग 1 पे० 12·00
कृष्ण : मेरी दृष्टि में भाग 2 पे० 12·00
कृष्ण और हंसता हुआ धर्म पा०
साक्षी कृष्ण और रासलीला पा०
कृष्ण : साधना रहित सिद्धि पा०
कृष्ण : जिज्ञामा, खोज, उपलब्धि पा०
कृष्ण : गुरु भी, सखा भी पा०

गीता : भक्ति और कर्म पा० रुपये

अष्टावक्र

महागीता भाग 1 डी०
महागीता भाग 1 सा० 30·00
महागीता भाग 1 पे०
महागीता भाग 2 सा० 12·00
महागीता भाग 2 डी०
महागीता भाग 3 सा० 30·00
महागीता भाग 3 डी०
महागीता भाग 4 सा० 30·00
महागीता भाग 4 डी०
महागीता भाग 5 सा० 30·00
महागीता भाग 5 डी० 30·00
महागीता भाग 6 सा० 25·00
महागीता भाग 7 डी० 25·00
महागीता भाग 8 डी० 25·00
महागीता भाग 9 डी० 25·00

महावीर

महावीर-वाणी भाग 1 वि० 95·00
महावीर-वाणी भाग 2 वि० 95 00
महावीर-वाणी भाग 1 डी० सा०
महावीर-वाणी भाग 2 डी० सा०
महावीर-वाणी भाग 3 डी० सा०
महावीर-वाणी पु०
जिन-सूत्र भाग 1 डी० 40·00
जिन-सूत्र भाग 1 सा० 25·00
जिन-सूत्र भाग 2 डी० 40·00
जिन-सूत्र भाग 2 सा० 25·00

	रुपये
जिन-सूत्र भाग 3 डी०	
जिन-सूत्र भाग 3 सा०	
जिन-सूत्र भाग 4 डी०	30·00
महावीर या महाविनाश सा०	
महावीर : मेरी दृष्टि में डी०	
महावीर : मेरी दृष्टि में भाग 1 पे०	12·00
महावीर : मेरी दृष्टि में भाग 2 पे०	12·00
अहिंसा-दर्शन पु०	
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया सा०	
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया पा०	
महावीर और मैं पा०	
सूली ऊपर सेज पिया की सा०	
सूली ऊपर सेज पिया की पा०	
पथ की खोज सा०	
सिंहनाद पु०	
महावीर : परिचय और वाणी सा०	
महावीर : अहिंसा, अहंकार और मोक्ष पा०	
महावीर भोग और त्याग पा०	
महावीर : ब्रह्मचर्य, कर्मवाद और पुनर्जन्म पा०	
बुद्ध	
एस धम्मो सनंतनो भाग 1 डी०	40·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 1 सा०	25·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 2 डी०	40·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 2 सा०	
एस धम्मो सनंतनो भाग 3 डी०	40·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 3 सा०	25·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 4 डी०	37·00
एस धम्मो सनंतनो भाग 5 डी०	37·00

	रुपये
एस धम्मो सनंतनो भाग 6 डी०	
लाओत्से	37·00
ताओ उपनिषद् भाग 1 डी०	
ताओ उपनिषद् भाग 1 सा०	
ताओ उपनिषद् भाग 2 डी०	20·00
ताओ उपनिषद् भाग 3 डी०	
ताओ उपनिषद् भाग 3 सा०	
ताओ उपनिषद् भाग 4 डी०	35·00
ताओ उपनिषद् भाग 5 डी०	37·00
ताओ उपनिषद् भाग 6 डी०	37·00
झेन, सूफी और उपनिद् की कहानियां	
बिन बाती बिन तेल डी०	
बिन बाती बिन तेल सा०	25·00
सहज समाधि भली सा० डी०	
दिया तले अन्धेरा सा० डी०	
सूत्र	
शिव-सूत्र (शिव) सा० डी०	
शिव-सूत्र (शिव) पे०	10·00
भक्ति-सूत्र भाग 1 (नारद) डी०	
भक्ति-सूत्र भाग 1 (नारद) सा०	
भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) डी०	
भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) सा०	
भक्ति-सूत्र (नारद) वि०	75·00
अथातो भक्ति जिज्ञासा (शांडिल्य) भाग 1 डी०	35·00
अथातो भक्ति जिज्ञासा (शांडिल्य) भाग 2 डी०	35·00
भजगोविंदम (आदिशंकराचार्य) डी० सा०	
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य) वि०	45·00
कबीर	75·00
सुनो भई साधो वि०	

	रुपये
सुनो भाई साधो डी० सा०	
कहे कबीर दीवाना वि०	75·00
कहे कबीर दिवाना डी० सा०	
कहै कबीर मैं पूरा पाया वि०	75·00
कहै कबीर मैं पूरा पाया डी० सा०	
गूँगे केरी सरकरा डी० सा०	
मेरा मुझमें कुछ नहीं डी० सा०	
कस्तूरी कुण्डल बसै डी० सा०	
होनी होय सो होय डी०	25·00
गुरु गोविन्द दोउ खड़े पा०	
हीरा पायो गांठ गठियायो पा०	
नहीं जोग नहीं जाप पा०	
तेरा साईं तुज्झ में पा०	
क्या मेरा क्या तेरा पा०	
मगन भया रसि लागा पु०	15·00
मीरा	
पग घुंघरू बांध वि०	75.00
मैंने राम रतन धन पायो डी० सा०	
झुक आई बदरिया सावन की डी०	25·00
झुक आई बदरिया सावन की पु०	15·00
मेरे तो गिरधर गोपाल पा०	
राम नाम रस पीजै पा०	
दादू	
सबै सयाने एक मत डी०	
सबै सयाने एक मत सा०	15·00
पिव पिव लागी प्यास डी० सा०	
दादू सहजै देखिये पा०	
राम नाम निज औषधि पा०	
अन्य रहस्यवादी	
एक ओंकार सतनाम (नानक) डी० सा०	

	रुपये
एक ओंकार सतनाम (नानक) पे०	
एक ओंकार सतनाम (नानक) पा०	27·00
अकथ कहानी प्रेम की (फरीद) डी० सा०	
प्रेम गली अति सांकरी (फरीद) पा०	
जगत तरैया भोर की (दयाबाई) डी०	25·00
जगत तरैया भोर की (दयाबाइ) सा०	15·00
कन थोरे कांकर घने (मलूकदास) डी०	25·00
कन थोरे कांकर घने (मूलकदास) सा०	15·00
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास) डी०	25·00
कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया) डी०	
अमी झरत बिगसत कंवल (दरिया) डी०	30·00
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई) सा० डी०	
अजहूं चेत गंवार (पलटू) डी०	35·00
सपना यह संसार (पलटू) डी०	37·00
काहे होत अधीर (पलटू) डी०	40·00
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास) डी०	25·00
जस पनिहार धरे	
सिर सागर (धरमदास) डी०	25·00
का सोवै दिन रैन (धरमदास) डी०	25·00
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब) डी०	32·00
हरि बोलौ हरि बोल (सुन्दरदास) डी०	25·00
ज्योति से ज्योति जले (सुन्दरदास) डी०	32·00
नाम सुमरि मन बावरे (जगजीवन) डी०	25·00
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन) डी०	25·00
कहै वाजिद पुकार (वाजिद) डी०	25·00
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख) डी०	37·00
सहजयोग (सरहपा-तिलोपा) डी०	25·00
बिरहिनी मन्दिर दियना बार (यारी) डी०	30·00
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियाद बिहारवाले) डी०	

	रुपये
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन) डी॰	25·00
हंसा तो मोती चुगैं (लाल) डी॰	25·00
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा) डी॰	25·00
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास) डी॰	25·00
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल) डी॰	40·00

प्रश्नोत्तर

नहीं राम बिन ठांव डी॰	30·00
नहीं राम बिन ठांव सा॰	20·00
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन डी॰	30·00
उत्सव आमार जाति, आनन्द आमार गोत्र डी॰	25·00
मृत्योर्मा अमृतं गमय डी॰	25·00
प्रीतम छवि नैनन बसी डी॰	32·00
रहिमन धागा प्रेम का डी॰	30·00
उड़ियो पंख पसार डी॰	25·00
सुमिरन मेरा हरि करैं डी॰	25·00
प्रिय को खोजन मैं चली डी॰	25·00
साहेब मिल साहेब भये डी॰	30·00
साहेब मिल साहेब भये सा॰	15·00
जो बोलैं तो हरिकथा डी॰	
जो बोलैं तो हरिकथा सा॰	15·00
बहुरि न ऐसा न दांव डी॰	
बहुरि न ऐसा न दांव सा॰	15·00
ज्यूं था त्यूं ठहराया डी॰	32·00
ज्यूं था त्यूं ठहराया सा॰	
ज्यूं मछली बिन नीर डी॰	15·00
ज्यूं मछली बिन नीर सा॰	
दीपक बारा नाम का डी॰	
दीपक बारा नाम का सा॰	15·00
अनहद में बिसराम सा॰	15·00
लगन महूरत झूठ सब सा॰	15·00
सहज आसिकी नाहीं सा॰	15·00
पीवत रामरस लगी खुमारी पे॰	12·00

	रुपये
राम नाम जान्यो नाहीं पे॰	
सांच सांच सो सांच पे॰	20·00
आपुई गई हिराय पे॰	14·00
बहुतेरे हैं घाट पे॰	17·00
कोंपलें फिर फूट आईं पे॰	
फिर पत्तों की पांजेब बची सा॰	15·00
फिर अमरित की बूंद पड़ी सा॰	20·00
मूलभूत मानवीय अधिकार पु॰	20·00
नया मनुष्य : भविष्य की एकमात्र आशा पु॰	10·00
चेति सकै तो चेति पा॰	
क्या सोवै तू बावरी पा॰	
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् पु॰	15·00
रसो वै सः पु॰	15·00
पंडित पुरोहित और राजनेता :	
मानव आत्मा के शोषक पु॰	15·00
सच्चिदानन्द पु॰	
ओ३म् मणि पद्मे हुम् पु॰	
सारे फासले मिट गये पु॰	

साधना शिविर

साधना-पथ सा॰	
साधना-पथ पे॰	15·00
ध्यान-सूत्र पा॰	
जीवन ही है प्रभु पा॰	
अन्तर्यात्रा सा॰ पा॰	
शून्य की नाव सा॰ पा॰	
माटी कहै कुम्हार सूं पा॰	
मैं मृत्यु सिखाता हूं डी॰	25·00
मैं मृत्यु सिखाता हूं पे॰	
सत्य की खोज सा॰ पा॰	
प्रभु की पगडंडियां सा॰ पा॰	
संभावनाओं की आहट सा॰ पा॰	
असंभव क्रान्ति पा॰	

रुपये

जिन खोजा तिन पाइयां डी० पे०
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की) सा० डी०
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स) डी० सा०
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स) पे० 12·00

ध्यान, साधना, योग

रजनीश ध्यान योग सा० 25·00
रजनीश ध्यान योग पा०
रजनीश ध्यान दर्शन पा०
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम् पा०
नेति नेति सा० 10·00
मैं कहता आंखन देखी 1 सा०
मैं कहता आंखन देखी 2 सा०
मेडिसिन और मेडिटेशन पु०
समाधि के द्वार पर सा०
योग : नये आयाम पु०
गहरे पानी पैठ सा०
शून्य का दर्शन पा०
शून्य समाधि पा०
संबोधि के क्षण पा०
ध्यान : क्या, क्यों और कैसे पा०
शून्य के पार पा०
योग-दर्शन भाग 1—2 सा०
योग-दर्शन भाग 5 पा०
योग-दर्शन भाग 6 पा०
योग-दर्शन भाग 7 पा०
योग-दर्शन भाग 8 पा०

तन्त्र

संभोग से समाधि की ओर वि०
संभोग से समाधि की ओर सा०
संभोग से समाधि की ओर पा०
युवक और यौन पु०
युवक और सेक्स पा०

रुपये

यौन-शक्ति पु०
यौन-शक्ति का रूपान्तरण पा०
तन्त्र-सूत्र भाग 1 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 2 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 3 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 4 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 5 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 6 पा० 3·00
तन्त्र-सूत्र भाग 7 सा० 20·00
तन्त्र-सूत्र भाग 8 सा० 20·00
काम, ध्यान और अध्यात्म पा०

संन्यास

अवधिगत संन्यास पु०
नव-संन्यास क्या सा०

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

भारत के जलते प्रश्न सा०
देख कबीरा रोया डी० सा०
नये समाज की खोज पा०
काम, योग, धर्म और गांधी पा०
भारत, गांधी और मैं सा० पा०
अस्वीकृति में उठा हाथ सा०
गांधीवाद : एक और समीक्षा पु०
समाजवाद से सावधान सा० पा०
समाजवाद अर्थात् आत्मघात सा०
क्रान्ति की वैज्ञानिक प्रक्रिया पु०
क्रान्ति के बीच सबसे बड़ी दीवार पु०
प्रगतिशील कौन पु०
धर्म और राजनीति पु०
विद्रोह क्या है पु०
क्रान्ति की नई दिशा, नई बात पु०
नये भारत की ओर पा०
नये भारत की खोज पा०

शिक्षा

शिक्षा में क्रान्ति सा०
नये मनुष्य के जन्म की दिशा पु०
क्रान्तिनाद सा०
अज्ञात की ओर पु०
अज्ञात के नये आयाम पु०
युवक कौन पु०
विवाह एवं परिवार नियोजन
प्रेम और विवाह पु०
परिवार नियोजन : एक दार्शनिक चिंतन पु०
नारी और क्रांति पु०
नारी : एक और आयाम पु०
जनसंख्या विस्फोट पु०

ज्योतिष

ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान पु० पा०
ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म पु० पा०

हास्य-विनोद

हंसना मना है पा०
मुल्ला नसरुद्दीन सा०

बोध-कथा

मिट्टी के दिए सा०

विविध

मैं कौन हूं सा०
नये संकेत पु०
अमृत-वाणी पु०

पत्र-संकलन

तत्वमसि सा०
ढाई आखर प्रेम का सा० पा०
पद घुंघरू बांध सा०
क्रान्ति-बीज सा०
पथ के प्रदीप डी० पा०
प्रेम के फूल सा०

अन्तर्वीणा सा०
पाथेय डी०

संकलन

मैं स्वयं को भगवान क्यों कहता हूं पु०
अंकुर (सोवेनियर)
नैवेद्य (सोवेनियर)
आशीष (सोवेनियर)

पूर्व-प्रकाशित पत्रिकाएं

ज्योति शिखा
युक्रांद
रजनीश दर्शन
संन्यास
आनन्दनी
रजनीश-वाणी
रजनीश-संदेश
रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलेटर
रजनीश बुद्धाफील्ड हिन्दी न्यूजलेटर
भगवान द्विमासिक

भगवान् श्री रजनीश के सम्बन्ध में

आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि डी०
भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के पश्चाचात् सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति पु० 20·00
रजनीश यानी प्रेम पु०
इन्द्रधनुषी स्मृतियों में भगवान श्री रजनीश सा०
जाम ए रजनीश सा०
भगवान रजनी पर लिखीअद्भुत कहानियां :
धरती पर भगवान हैं आये सा०
भगवानश्री रजनीश पु०
कुछ ज्योतिमय क्षण पु०
शान्ति की खोज सा०

पुराने प्रवचन

जीवन क्रान्ति के फूल पु०

संबोधित-दिवस 21 मार्च 1989 पर प्रकाशित

महान चुनौति : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
सर्वसार उपनिषद्
कहता आँखन देखी
कैवल्य उपनिषद्
नेति-नेति
बिन घन परत फुहार
चल हंसा उस देश
ध्यान-सूत्र
हरि ओ३म् तत्सत्
महावीर या महाविनाश
बहुतेरे हैं घाट
समाधि के सप्त द्वार
सहज समाधि भली
मेरा स्वर्णिम भारत

- भगवान श्री के आडियो एवं विडियो प्रवचन और हिन्दी साहित्य की समस्त जानकारी, आर्डर एवं राशि भेजने के लिए

सम्पर्क-सूत्र

साधना फाउंडेशन

17 कोरेगांव पार्क, पूना-411001 (महाराष्ट्र)
फोन : 90953, 60954, 60963, 660963

भगवान श्री रजनीश उद्भट विद्वान हैं। धर्म, समाज और राजनीति पर पैनी दृष्टि रखने के कारण वह अत्यन्त विवादास्पद हो गये हैं, पर उनकी विद्वत्ता और अकाट्य तर्क शक्ति का लोहा सभी मानते हैं। प्रत्येक बिषय का प्रतिपादन वह अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ सप्रमाण करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक उनके ऐसे ही विद्वत्तापूर्ण विचारों और निष्कर्षों का ऐसा उपयोगी संकलन है जो आप को नये विचार, नयी दिशा प्रदान करेगा।

भगवान श्री रजनीश की एक विद्वत्तापूर्ण गवेषणात्मक पुस्तक।